

॥ श्रीगरोशाय नमः॥

# शिवभक्त-माल

[ काशी-मोच्च-विचार सहित ]



"विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा "शिवं" शान्तिमत्यन्तमेति ॥" (श्वेताश्वतरोपनिषत्)

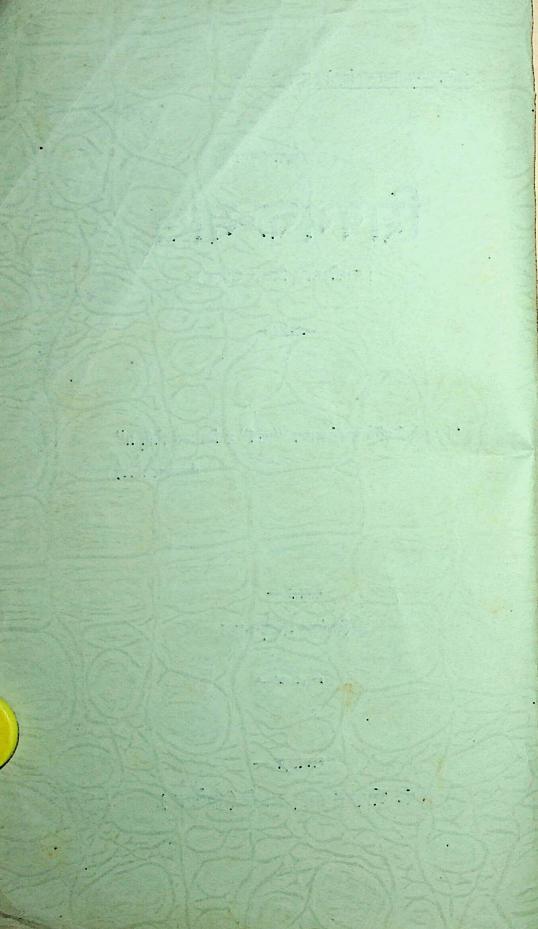
लेखकः--

गौरीकांकर गनेड़ीवाला



सम्पाद्कः--

ं पं० श्रीसरयूप्रसाद् वास्त्री ( विजेन्द्र )



(

(

(

(

Œ

•

ママ

॥ ॐ नमः शिवायः॥

# शिव-भक्त-माल

[ काशी-मोच्च-विचार सहित ]

उत्तरार्द्ध

CO \$500

लेखक तथा प्रकाशक— गौरीदाङ्कर गनेड़ी वाला गोरखपुर।

-

सम्पादक-

"साहित्यरत्न" श्रीसरयूप्रसाद्पाण्डेय, (द्विजेन्द्र) "साहित्य-शास्त्री, काव्यतीर्थ"।

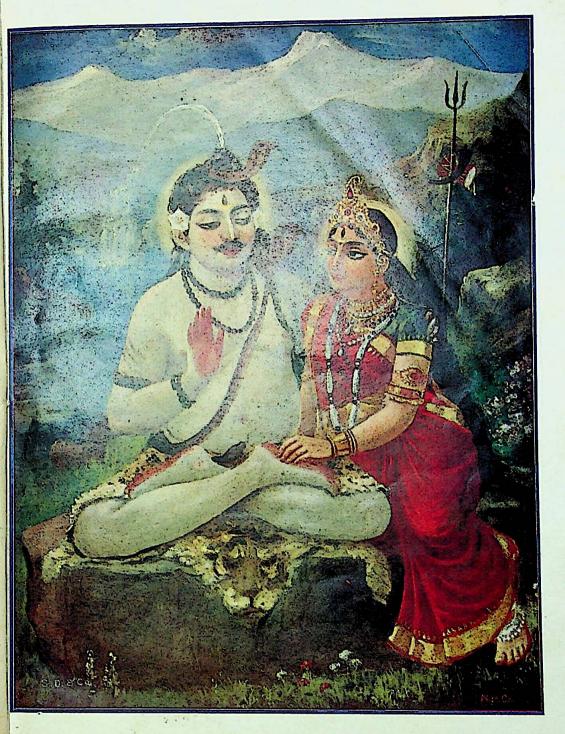
0

प्रथम बार १००० प्रति ं मकर-सं≉ान्ति सवत् १९८७ वि०

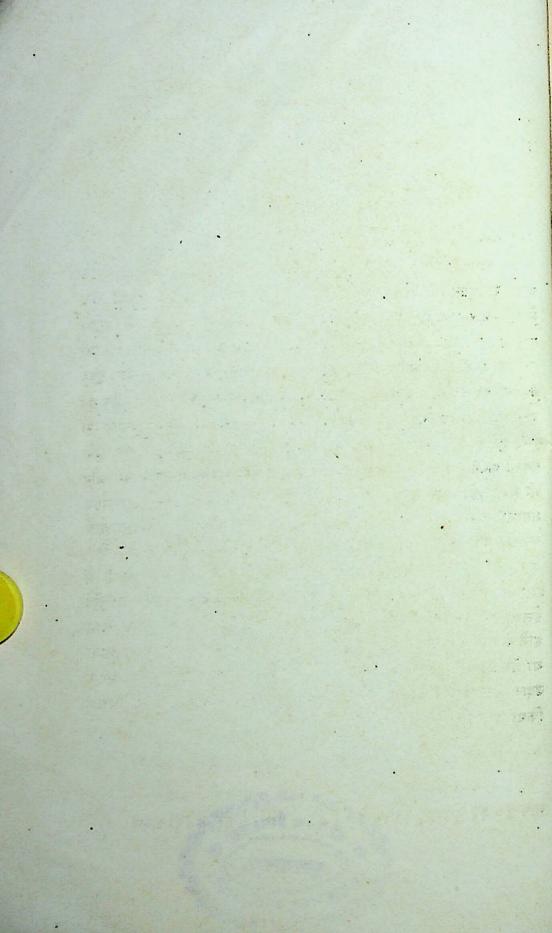
| मूल्य ॥=) | सजिहद् ॥)

प्रकार्यक्रम् गौरीशङ्कर् गनेदीवाला, गोरखपुर ।

> सहादुरराय जी, सहादुरराय जी, हितेषी प्रिंटिंग वक्से, नीचीवाग, बनारस ।







श्रोगणेशाय नमः

# · 古田田 等

ईश रभक्त, प्रेमी सज्जनी !

श्राज मेरा परम सौमाग्य है कि परब्रह्म परमात्मा श्रीशंकरजी की श्रसीम कृपा से "शिव-मक्त-माल" का यह द्वितीय पुष्प लेकर में आप लोगों की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। यह रत्नमाला भगवान् अन्तर्यामी शिवजी की प्रेर्णा तथा पूज्यश्रो स्वामी घनश्यामानन्द जी महाराज तीर्थ एवं पूज्यश्री पंडित राम-लालजी शास्त्री की आजा और अनुमोदन द्वारा-जिसका ६१ कथा-रतन पूज्य नं श्रम्बिकाद्त्तती उपाध्याय पमः प० सांख्ययोग-शास्त्री द्वारा, शेष ४८ रत्नों को, "साहित्यरत्न" थी द्विजेन्द्रकवि द्वारा शुद्ध कराकर, प्रेमस्त्रो तागे में गुंथी हुई १०६ भक्तरत्नों की माला को प्रेमो सर्जन धारण करके मुक्ते कृतार्थं करेंगे। यदि यह माला किसी मर्मन्न भक्त द्वारा उपस्थित होती तो श्रीर भी आप लोगों के हृदय को हर्ष बढ़ानेत्राली होती । ये रत्न पुराणादि महाभारत-सागर से एकत्र किये गये हैं। केवल १८ वाँ रत पुष्पद्रन्ताचार्य का, ६३ वाँ रत्न महाराज भतृहरिका आधुनिक पुस्तक से ही लिया गया है। जिन पुराणादि प्रन्थों से लेख लिये गये हैं, उनके तो हम ऋणी हैं ही, पर पं अन्त्रिकाइत्तजो तथा पं सम्यूपसादजी की परम दया है-जिन्होंने इसका सम्पादन करके अपना श्रमूल्य समय दिया है। भक्त-जन शिव कथा होने के नाते इस पुस्तक को अपनावेंगे और दू हि दोष या प्रेस की असावधानी या मेरे प्रेम की बुटि से जो गलती रह गई हो, उसको विश्व पाठक अपनी उदार बुद्धि से मुक्ते लिखने को कृपा करेंगे-जिससे द्वितीय। वृति में विचार किया जावे।

मक्र-संक्रान्ति माघ कु० ११ बुधवार, १९५७ वि०

भगवत्रकों का दास— गौरीशंकर गनेड़ीवाला

# शिवभक्त-माल

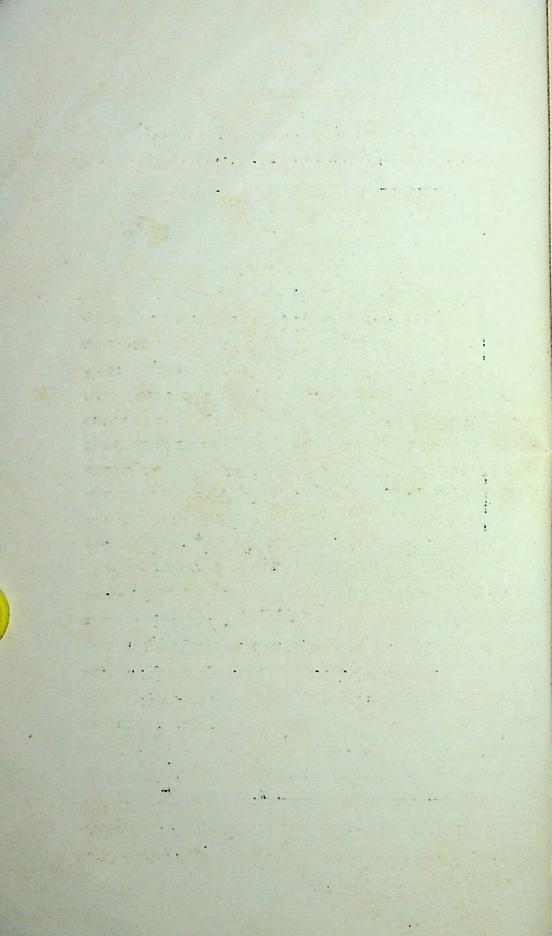
# सुचीपत्र

| ६१          | श्री शिवव्यपोहन स्तोत्र  | १६३   | ८६ . , श्रजापाल              | <b>२२१</b>  |
|-------------|--------------------------|-------|------------------------------|-------------|
| <b>62</b>   | भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र   | १६८   | ८७ ,, दशरथजी                 | २२४         |
| 63          | जगन्माता श्रीलक्ष्मीजी   | १७२   | ८८ ॥ इन्द्रसेन               | २२५         |
| ६४<br>६४    | दानवीर राजा वलि          | १७५   | ८६ शिवभक्त कामेरूपेश्वरजी    | २२६         |
| <b>É</b> 4  | शैव रावण                 | १७८   | ६० एक राजकुमार               | २२८         |
| TO STATE OF | शिव-भक्त वाणासुर         | १८१   | ६१ वैष्णुव-शिरोमणि           |             |
| <b>६६</b>   | महिष वाल्मीकिजी          | १८८   | भीष्मिपतामह                  | २३१         |
|             |                          | १८५   | ६२ शिवमक सुधर्मा श्रीर तारक  | २३२         |
| 28          | THE THE                  | १८६   | ९३ विरक राजा भर्तृहरि        | २३३         |
| 88.         | ., शुरसम्ब<br>सुपर्ण     | 829   | '६४ कृष्णिया सत्यभामा        | २२७         |
| 90          | चधर्म                    | १८८   | ६५ महारानी कुमुद्रती         | २२७         |
| 65          | ,, ऋषि समूह              | १६२   | ६६ शिवमक राजा भद्रायुं श्रीर | 7.          |
| 92          | 10                       | 888   | रानी कीर्तिमालिनी            | 280         |
| 93          | महामुनि श्रीव्यासजी      | १६५   | ६७ राजकन्या सीमन्तिनी        | २४३         |
| OS          |                          | 238   | ६८ महारानी सुमिन             | 286         |
| ७५          | महामुनि दुर्वासाजी       |       | ६६ वैश्यवर्य सुविय           | २५२         |
| 98          | पक ब्राह्मण और उनके पु   | 4 400 | १०० एक वैश्य                 | २५४         |
| 69          |                          | 2-2   | १०१ शिवभक्त धर्मगुप्त        | 244         |
|             | सोमवती                   | २०२   |                              | <b>२</b> २६ |
| 96          | ऋ वित्रवर्ष बालिबन्य     | २०५   | १०३ नन्दी वैश्य श्रीर महाकाल | 246         |
| 30          | योगाचार्य जैगीषश्वा      | २०६   | १०४ परम शैव आहुक भील         | २६१         |
| 60          | इक्ष्मकु ब्राह्मण        | २०६   | १०% चराड शबर                 | २६३         |
| ८१          | शिव-भंक तण्डी ऋषि        | २१२   | १०६ एक बहेलिया               | २६५         |
| 13          | धुन्धुमूक ब्राह्मण श्रीर |       |                              | 250         |
|             | उनके पुत्र               | २१४   | १०७ एक राश्चस                | २६८         |
| ८३          | शिवमक कल्रहंसजी          | २१६   | १०८ महानन्दा वैश्या          | २७१         |
| 58          | क्रतु स्वयम्भु मनु       | २१६   | १०६ एक वेश्या                |             |
| 64          | महाराज मान्धाता          | २२०   | काशी मोक्ष विवार             | 8:34        |

सेठ रामचन्द्र जी गनेड़ीवाला, मुकुन्दगढ़ ( जयपुर ) [जन्म सं० १६१६, काशीवास ज्येष्ठ कृष्ण १३ रविवार सं० १६७७ वि०]



प्रभुको भक्त रत्न की माला, भक्ति युक्त पहना दीजे ।
कृपासिन्धु की दया दृष्टि पितु ! मेरी ओर करा दीजे ।।
होने प्रेम उमा-महेश में, यह वरदान दिला दीजे ।
अपने गौरीशंकर का कर, शंकर-हाथ धरा दीजे ।।
गौरीशंकर ।



नमः शिवाय

# शिव भक्त माल

# उत्तरार्ध



## श्रीशिव व्यपोहन स्तोत्र

व्यपोहनस्तवं वच्ये सर्वसिद्धिप्रदं शुभम्। नंदिनश्च मुखाच्छुत्वा कुमारेण महात्मना ॥ १ ॥ व्यासाय कथितं तस्माद्वहुमानेन वै मया । नमः शिवाय शुद्धाय निर्मेलाय यशस्विने ॥ २ ॥ दुष्टांतकाय सर्वाय भवाय परमात्मने । पंचवक्रो दशभुजो ह्यचपंचदशैर्युतः ॥ ३॥ शुद्धस्फटिकसंकाशः सर्वाभरणभूषितः । सर्वज्ञः सर्वगः शांतः सर्वोपिर सुसंस्थितः ॥ ४ ॥ पद्मासनस्थः सोमेशः पापमाशु व्यपो-हतु । ईशानः पुरुषश्चीव ब्रघोरः सद्य एवं च ॥ ५ ॥ वामदेवश्च भगवान्पापमाश्च ब्यपोह्तु । श्रनंतः सर्वविद्येशः सर्वज्ञः सर्वदः प्रभुः ॥ ६ ॥ शिवध्यानैकसंपन्नः स मे पापं व्यपोहतु । सूदमः सुरासुरेशानो विश्वेशो गणपूजितः॥ ७॥ शिव-ध्यानैकसंपन्नः स मे पापं व्यपोहतु । शिवोत्तमो महापूज्यः शिवध्यानपरायणः ॥ ८॥ सर्वगः सर्वदः शांतः स मे पापं व्यपोहतु । एकाक्तो भगवानीशः शिषा-र्चनपरायणः ॥ ९ ॥ शिवध्यानैकसंपन्नः स मे पापं व्यपोहतु ।त्रिमूर्तिर्भगवानी-शः शिवभक्तिप्रबोधकः ॥ १० ॥ शिवध्यानैकसंपन्नः स मे पापं व्यपोह्तु । श्रीकंठः श्रीपतिः श्रीमाञ्छिवध्यानरतः सदा ॥ ११ ॥ शिवार्चनरतः साज्ञात् स मे पापं व्यपोद्दतु । शिखंडी भगवाञ्चान्तः शवभस्मानुलेपनः ॥ १२ ॥ शिवार्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु । त्रैलोक्यनमिता देवी सोल्काकारा पुरातनी ॥१३॥ दाज्ञायणी महादेवी गौरी हैमवती शुभा । एकपणींत्रजा सौम्या तथा वै चैक-पाटला ॥ १४ ॥ श्रपणा वरदा देवी वरदानैकतत्परा । उमा सुरहरा साज्ञात्कौ-शिकी वा कपर्दिनी ॥ १५ ॥ खट्वांगधारिणी दिव्या कराव्रतरुपञ्चवा । नैगमेया-दिभिर्दिन्यैश्चतुर्भिः पुत्रकैर्नृता ॥ १६ ॥ मेनाया नंदिनी देवी वारिजा बारिजेच-णा। श्रंबाया वीतशोकस्य नंदिनश्च महात्मनः ॥१७॥ शुभावत्याः सखी शांता पंचचुडा वरप्रदा । सृष्ट्यर्थं सर्वभूतानां प्रकृतित्वं गतान्यया ॥ १८ ॥ त्रयोविंश-तिभिस्तत्वैर्महदाद्यैर्विज्मिमता । लद्मयादिशक्तिभिनित्यं निमता नंदनंदिनी ॥१९॥

मनोन्मनी महादेवी मायाची मंडनप्रिया । मायया या जगत्सवे ब्रह्माद्यं सचराच-रम् ॥ २० ॥ चोभिगी मोहिनी नित्यं योगिनां हृदि संस्थिता। एकानेकस्थिता लोके इंदीवरिनभेक्षणा ॥ २१ ॥ भक्त्या परमया नित्यं सर्वदेवरभिष्ट्रता । गर्णेतां भोजगर्भेन्द्रयमवित्तेशपूर्वकैः ॥ २२ ॥ संस्तृता जननी तेषां सर्वोपद्रवनाशिनी । भक्तानामार्तिहा भाव्या भवभावविनाशिनी ॥ २३ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदा दिव्या भक्ता-नामप्रयत्नतः । सा मे साज्ञान्महादेवी पापमाग्रु व्यपोहतु ॥ २४॥ चंडः सर्वगणे-शानो मुखाच्छंभोविनिर्गतः। शिवार्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोह्तु ॥ २५ ॥ शालंकायनपुत्रस्तु हलमार्गोत्थितः प्रभुः। जामाता मरुतां देवः सर्वभूतमहेश्वरः ॥ २६ ॥ सर्वगः सर्वद्वक् शर्वः सर्वेशसदृशः प्रभुः । सनारायण्कैर्देवैः सेंद्रचंद्रदि-वाकरैः ॥ २७ ॥ सिद्धेश्च यत्तगंधर्वे भूंतैभूंतविधायकैः । उरगैर्ऋषिभिश्चैव ब्रह्म-णा च महात्मना ॥ २८ ॥ स्तृतस्त्रेलोक्यनाथस्तु मुनिरंतःपुरं स्थितः । सर्वदा पूजितः सर्वेर्नदी पापं व्यपोहतु ॥ २९ ॥ महाकायो महातेजा महादेव इवापरः। शिवार्चनरतः श्रीमान्स मे पापं व्यपोहतु ॥ ३० ॥ मेरुमंदारकैलासतटकूटप्रभे-दनः । परावतादिभिर्विव्यैर्दिगाजैश्च सुपूजितः ॥ ३१ ॥ सप्तपातालपादश्च सप्त-द्वीपोरुजंबकः । सप्तार्णवांकुशश्चैव सर्वतीर्थोद्रः शिवः ॥ ३२ ॥ श्राकाशदेहो दि-खाडुः सोमसूर्याग्रिलोचनः। हतासुरमहावृत्तो ब्रह्मविद्यामहोत्कटः॥ ३३॥ ब्र-ह्याद्याधोरणैर्दिक्यैयोंगपाशसमिनवतैः। बद्धो हृत्युंडरीकाख्ये स्तंभे वृत्तिं निरुध्य च ॥ ३४ ॥ नागंद्रवक्त्रो यः साज्ञाद्रणुकोटिशतैर्वृतः । शिवध्यानैकसंपन्नः स मे पापं न्यपोहतु ॥ ३५ ॥ भृंगीशः पिंगळाचोसौ भसिताशस्तु देहयुक् । शिवार्च-नरतः श्रीमान्स मे पापं व्यपोद्दतु ॥ ३६ ॥ चतुर्मिस्तनुभिनित्यं सर्वासुरनिवर्ह-णः । स्कंदः शक्तिधरः शांतः सेनानीः शिखिवाहनः ॥ ३७ ॥ देवसेनापितः श्री-मान्स मे पापं व्यपोहतु । भवः शर्वस्तथेशानो रुद्रः पश्चपतिस्तथा ॥ ३८ ॥ उम्रो भीमो महादेवः शिवार्चनरतः सदा। एताः पापं न्यपोहंतु मृतयः परमेष्ठिनः ॥ ३९ ॥ महादेवः शिवो रुद्रः शंकरो नीळळोहितः । ईशानो विजयो भीमो देव-देवो भवोद्भवः ॥ ४० ॥ कपालीशश्च विश्वेयो रुद्रा रुद्रांशसंभवाः । शिवप्रणामः संपन्ना व्यपोहंतु मलं मम ॥ ४१ ॥ विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तडो भास्करो रविः । लोकप्रकाशकश्चैव लोकसाची त्रिविकमः ॥ ४२ ॥ म्रादित्यस्य तथा सुर्यस्रांग्र-मांश्च द्वाकरः । पते वै द्वाद्शादित्या व्यपोहंतु मलं मम ॥ ४३ ॥ गगनं स्पर्शनं तेजो रसश्च पृथिवी तथा। चद्रः सूर्यस्तथात्मा च तनवः शिवभाषिताः॥ ४४॥ पाएं व्यपोहन्तु मम भयं निर्नाश्यंतु मे । वासवः पावकश्चैव यमो निर्ऋतिरेव च ॥ ४५ ॥ वरुणो वायुसोमो च ईशानो भगवान् हरिः । पितामहस्र भगवान्

शिवध्यानपरायणः ॥ ४६ ॥ पते पापं व्यपोहंतु मनसा कर्मणा कृतम् । नभस्वा-न्स्पर्शनो वायुरनिलो मास्तस्तथा ॥ ४७॥ प्राणः प्राणेशजीवेशौ मास्तः शिव-भाषिताः । शिवार्चनरताः सर्वे व्यपोहंतु मलं मम ॥ ४८ ॥ खेचरी वसुचारी च ब्रह्मेशो ब्रह्मब्रह्मधीः । सुषेणः शाश्वतः पृष्टः सुपुष्टश्च महावलः ॥ ४९ ॥ एते वै चारणाः शंभोः पूजयातीव भाविताः । ज्यपोहंतु मलं सर्वं पापं चैत्र मया कृतम् ,॥ ५०॥ मंत्रज्ञो मंत्रवित्प्राज्ञो मंत्रराट् सिद्धपूजितः। सिद्धवत्परमः सिद्धः सर्वे-सिद्धिप्रदायिनः ॥ ५१ ॥ न्यपोहंतु मलं सर्वे सिद्धाः शिवपदार्चकाः । यद्यो यद्ये-श्रधनदो जुंमको मणिभद्रकः ॥ ५२ ॥ पूर्णभद्रेश्वरो माली शितिकुएडलिरेव च । नरेन्द्रश्चैय यद्मेशा व्यपहंतु मृळं सम ॥ ५३ ॥ अनंतः कुळिकश्चैय वास्नुकिस्तत्तः कस्तथा । कर्कोटको महापद्मः शंखपालो महावलः ॥ ५४ ॥ शिवप्रणामसंपन्नाः शिवदेहप्रभूषणाः। मम पापं व्यपोहंतु विषे स्थावरजंगमम्॥ ५५॥ वीणाज्ञः किन्नरश्चैव सुरसेनः प्रमर्दनः । अतीशयः स प्रयोगी गीतज्ञश्चैव किन्नराः ॥५६॥ शिवप्रणामसंपन्ना व्यपोहंतु मलं मम । विद्याधरश्च विवुधो विद्याराशिर्विदां वरः ॥ ५७ ॥ विवुद्धो विवुधः श्रीमान्कृतज्ञश्च महायशाः । एते विद्याधराः सर्वे शिवध्यानपरायणाः ॥ ५८ ॥ व्यपोद्दंतु मळं घोरं महादेवप्रसादतः । वामदेवो महाजंभः कालनेमिर्महाबलः ॥ ५९ ॥ सुग्रीवो मर्दकश्चैव पिंगलो देवमर्दनः । प्रह्वादश्चाप्य नुहादः संहादः किल बाष्कली ॥ ६० ॥ जंभः कुंभश्च मायावी कार्त-वीर्यः कृतंजयः । पते सुरा महात्मानो महादेवपरायणाः ॥ ६१ ॥ व्यपोहंतु भयं . घोरमासुरं भावमेव च । गरुत्मान् खगतिश्चैव पित्तराण् नागमर्दनः ॥ ६२ ॥ ना-गशत्रुहिरएयांगो वैनतेयः प्रभंजनः । नागाशीर्विषनाशश्च विष्णुवाहन एव च ॥६३॥ पते हिरएयवर्णामा गरुडा विष्णुवाहनाः । नानाभरणसंपन्ना व्यपोहंतु मलं मम-॥ ६४ ॥ अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च अंगिरा भृगुरेव च । काश्यपो नारदश्चैव द्धीच-श्च्यवनस्तथा ॥ ६५ ॥ उपमन्युस्तथान्ये च ऋषयः शिवभाविताः । शिवार्चनरताः सर्वे व्यपोहंत मलं मम ॥ ६६ ॥ पितरः पितामहाश्च तथैव प्रपितामहाः । श्रग्नि-ष्वात्ता वर्हिषद्स्तथा मातामहाद्यः ॥ ६७ ॥ व्यपोहंतु भयं पापं शिवध्यानपरा-यणाः। छद्मीश्च धरणी चैव गायत्री च सरस्वती ॥ ६८ ॥ दुर्गा उपा शची ज्येष्ठा मातरः सुरपृजिताः । देवानां मातरश्चैव गणानां मातरस्तथा ॥ ६९ ॥ भूतानां मातरः सर्वा यत्र या गणमातरः । प्रसादादेवदेवस्य व्यपोहंतु मलं मम ॥ ७० ॥ उर्वशी मेनका चैव रंभा रतितिलोत्तमाः । सुमुखी दुर्मुखी चैव कामुकी कामवर्धनी ॥ ७१ ॥ तथान्याः सर्वछोकेषु दिःवाश्चाप्सरसस्तथा । शिवाय तांडवं नित्यं कुर्वत्योतीव माविताः॥ ७२॥ देव्यः शिवार्चनरता व्यपोहंतु मलं मम॥

अर्कः सोमोंगारकश्च वुधश्चैव बृहस्पतिः ॥ ७३ ॥ शुक्रः शनैश्चरश्चैव राहुः केत्-स्तथैव च । व्यपोहंतु भयं घोरं ब्रह्पीडां शिवार्चकाः ॥ ७४ ॥ मेषो चुषोध मिथु-नस्तथा कर्कटकः ग्रुभः। सिंह्य कन्या विपुला तुला वै वृश्चिकस्तथा॥ ७५॥ धनुश्च मकरश्चैव कुंभो मीनस्तथैव च । राशयो द्वादश होते शिवपूजापरायणाः ॥ ७६ ॥ व्यपोहंतु भयं पापं प्रसादात्परमेष्टिनः । अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा ॥ ७७ ॥ श्रीमन्मृगशिरश्चार्द्रा पुनर्वसुपुष्यसार्पकाः । सघा चै पूर्व-फाल्गुन्य उत्तराफाल्गुनी तथा॥ ७८॥ हस्तश्चित्रा तथा स्वाती विशाखा चानु-राधिका । ज्येष्टा मूळं महाभागा पूर्वाषाढा तथैव च ॥ ७९ ॥ उत्तराषाढिका चैव श्रवणं च श्रविष्ठिका । शतभिषकपूर्वभद्रा च तथा प्रोष्ठपद्रा तथा ॥ ८० ॥ पौष्णां च देव्यः सततं व्यपोहंतु मलं मम । ज्वरः कुंभोद्रश्चैव शंकुकर्णों महावलः ॥ ८१ ॥ महाकर्णः प्रभातश्च महाभूतप्रमद्नैः । श्येनजिच्छिवदूतश्च प्रमथाः प्रीतिवर्धनाः ॥ ८२ ॥ कोटिकोटिशतैश्चैव भूतानां सातरः खदा । व्यपोहंतु भयं पापं सहादेव-प्रसादतः ॥ ८३ ॥ शिवध्यानैकसंपन्नो हिमराडंवुसन्निभः । कुन्देन्दुसद्वशाकारः कुंभकुदेन्दुभूषणः ॥ ८४ ॥ वडवानलशत्रुर्यो वडवामुखभेद्नः । चतुष्पाद्समा-युक्तः चीरोद इव पांडुरः ॥ ८५ ॥ ठद्रलोके स्थितो नित्यं रुद्रैः सार्धं गणेश्वरैः। वृषे-द्रो विश्वधृग्देवो विश्वस्य जगतः पिता ॥ ८६ ॥ वृतो नंदादिभिर्नित्यं मातृसि-र्मखमर्दनः । शिवार्चनरतो नित्यं स मे पापं व्यपोहतु ॥८७॥ गंगा माता जगन्मा-ता रुद्रलोके व्यवस्थिता। शिवभक्ता तु या नंदा सा मे पापं व्यपोहतु ॥=८॥ भद्रा भद्रपदा देवी शिवलोके व्यवस्थिता। माता गवां महाभागा सा मे पापंव्यपोहतुप्र सुरभिः सर्वतोभद्रा सर्वपापप्रणशिनी। रुद्रपूजारता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु९० सुशीला शीलसंपन्ना श्रीप्रदा शिवभाविता । शिवलोके स्थिता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु ॥ ९१ ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्वकार्यामिर्चितकः । समस्तगुणसंपन्नः स-र्वदेवेश्वरात्मजः ॥ ९२ ॥ ज्येष्टः सर्वेश्वरः सौम्यो महाविष्णुतनुः स्वयम् । श्रार्थः सेनापितः साचाद्रह्नो मखमर्दनः॥ ९३॥ ऐरावतगजास्तः कृष्णकुंचितमूर्धजः। कृष्णांगो रक्तनयनः शशिपन्नगभूषणः॥ ९४॥ भूतैः प्रेतैः पिशाचैश्च कूष्मांडैश्च स-माचृतः । शिवार्चनरतुः साज्ञात्स मे पापं व्यपोहतु ॥ ६५ ॥ ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णुवी तथा। वाराही चैव माहेन्द्री चामुंडाग्नेयिका तथा॥ ९६॥ पता वै मातरः सर्वाः सर्वछोकप्रपृजिताः । योगिनीभिर्महापापं व्यपोद्दंतु समाहिताः ॥९७॥ वीरभद्रो महातेजा हिमकुन्देन्दुसन्निभः ॥ रुद्रस्य तनयो रौद्रः ग्रुलासक्तम-हाकरः ॥ ६८ ॥ सहस्रवाहुः सर्वद्यः सर्वायुधधरः स्वयम् ।त्रेताग्निनयनो देवस्त्रेलो-क्याभयदः प्रभुः ॥ ९६ ॥ मातृणां रक्तको नित्यं महावृषभवाहनः । त्रेलोक्यनमितः

श्रीमान्शिवपादार्चने रतः ॥ १०० ॥ यज्ञस्य च शिरश्च्छेचा पूष्णो दंतविनाशनः । वन्हेर्हस्तहरः साचाद्भगनेत्रनिपातनः ॥१०१॥ पादांगुष्ठेन सोमाङ्गपेवकः प्रभुसंज्ञकः। . उपेन्द्रेन्द्रयमादीनां देवानामंगरत्तकः ॥ १०२ ॥ सरस्वत्या महादेव्या नासिकोष्ठा-वकर्तनः । गणेश्वरो यः सेनानीः स मे पापं व्यपोहतु ॥ १०३ ॥ ज्येष्ठा चरिष्ठा च-रदा चराभरणभूषिता। महालद्मीर्जगन्माता सा मे पापं व्यपोहतु॥ १०४॥ म-हामोहा महाभागामहाभूतगणैर्वृता । शिवार्चनरता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु ॥ १०५ ॥ लद्मीः सर्वगुणोपेता सर्वल्याणसंयुता । सर्वदा सर्वगा देवी सा मे पा-पं व्यपोहतु ॥ १०६ ॥ सिंहारूढा महादेवी पार्वत्यास्तनयाव्यया । विष्णोर्निद्रा म-हामाया वैष्णवी सुरपुजिता ॥१०७॥ त्रिनेत्रा वरदा देवी महिषासुरमर्दिनी।शि-वार्चनरता दुर्गों सा मे पापं व्यपोहतु ॥ १०८ ॥ ब्रह्मांडधारका रुद्राः सर्वेलोकप-पूजिताः। सत्याश्च मानसाः सर्वे व्यपोहंतु भयं मम ॥ १०९॥ भूताः प्रेताः पिशा-वाश्च कूष्मांडगणनायकाः ।कूष्मांडकाश्च ते पापं व्यपोहंतु समाहिताः ॥ ११० ॥ अनेन देवं स्तुत्वा तु चांते सर्वं समापयेत्। प्रणम्य शिरसा भूमौ प्रतिमासे द्विजो-त्तमाः ॥ १११ ॥ व्यपोहनस्तवं दिव्यं यः पठेच्छृणुयाद्पि । विधूय सर्वपापानि रुद्रलोके महीयते ॥११२॥ कत्यार्थी लमते कत्यां जयकामो जयं लमेत् । अर्थका-मो लभेद्ध पुत्रकामो वहून् सुतान् ॥ ११३ ॥ विद्यार्थी लभते विद्यां भोगार्थी भो-गमाष्तुयात् । यान्यान्प्रार्थयते कामान्मानवः श्रवणादिह ॥ ११४ ॥ तान्सर्वान् शीव्रमाप्नोति देवानां च प्रियो भवेत् । पठ्यमानिमदं पुरायं यमुद्दिश्य तु पठ्यते ॥ ११५ ॥ तस्य रोगा न वाधन्ते वातिपत्तादिसंभवाः । नाकाले मरणं तस्य न सपैरिप दश्यते ॥ ११६ ॥ यत्पुर्यं चैव तीर्थानां यज्ञानां चैव यत्फलम् । दानानां चैव यत्पुर्यं वतानां च विशेषतः ॥ ११७ ॥ तत्पुर्यं कोटिगुर्शितं जप्त्वा चामोति मानवः। गोघ्रश्चैव कृतघ्रश्च वीरहा ब्रह्महा भवेत् ॥ ११८ ॥ शारणागतघाती च मित्रविश्वासघातकः । दुष्टः पापसमाचारो मातृहा पितृहा तथा ॥ ११९ ॥ व्य-पोद्यसर्वपापानि शिवलोके महीयते ॥ १२० ॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे व्यपोहनस्तवनिकणं नाम द्वयशीति-तमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

### बासठवाँ रतन

#### भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र

लीला पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की आठ पटरानियाँ थीं। उनमें से जाम्बवती के एक भी पुत्र नहीं था। उन्होंने एक वार कृष्णजी से प्रार्थना की कि हे देव! मेरे एक भी पुत्र नहीं है इस लिए में वड़ी विन्तित रहती हूं। आपने भगवान् शङ्कर की आराधना कर रुक्मिणी के आठ पुत्र उत्पन्न किए। इसी प्रकार आप मेरे लिए भी शंकर जी की आराधना की जिए। हे प्रभो! आपके लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं। आप अपने समान पुत्र देकर सुभे कृतार्थ एवं चिन्तारहित की जिए।

जाम्बवती की प्रार्थना सुन कर भगवान् सृष्ण गरुड़ पर आकृ हो हिमालय पर्वत को चले। वहाँ वे एक आश्रम में उतर गए। उस आश्रम की शोभा विचित्र थी। धव, कद्म्व, नारिकेल, केतक, जम्बु, वट, बिल्व, सरल, किंप्त्य, प्रियाल, साल, तमाल आदि अनेक प्रकार के बृत्ताें से वह आश्रम एक दम हरा हो रहा था। भिन्न भिन्न प्रकार के विहग सुस्वाद और सुपक फलें के लोभ से उन पर मड़रा रहे थे। मृग, वानर, शार्दूल, सिंह, व्याघ्र, महिष, ऋन आदि अनेक श्वापदों से उसमें एक विचित्र रमणीयता दृष्टिगोचर हो रही थी।

देवियाँ के गीत से, धारा के निनादों से, विहक्षमोँ के कलरव से, मत्त मतक्षजोँ के गर्जन से किन्नरोँ के मनोहर गान से, सामवेद की रमणीय ध्वनि से वह श्राश्रम शब्दायमान हो रहा था।

वहाँ पर असंख्य मुनि तपस्या कर रहे थे। कोई केवल वायु पीकर जीवन निर्वाह करते थे, कोई केवल जल पीकर अपने शरीर की रक्षा कर रहे थे, कोई हो चार घूट दूध पीकर अपने पाञ्चभौतिक शरीर का पोषण कर रहे थे। वे सब केवल चीर अथवा वलकल धारण किए हुए कठिन वत का पालन कर रहे थे और अपने जीवनलाभ का पूर्ण फल पा रहे थे।

कृष्णवन्द्रजी भी उसी परम पुनीत वन के एक खिचर प्रदेश में महर्षि उपमन्यु की दीवा लेकर तपस्या करने छगे। उन्होंने दएड और मेखला का धारण कर लिया। हाथ में कुशा ले लिए। मुएडन करा लिया। एक शिवलिक स्थापित कर उनकी प्रतिदिन षोड़शोपचार से पूजा करते हुए घोर तप करने लगे। प्रारम्भ में उन्होंने एक महीने तक केवल फल खाए। दूसरे महीने में केवल जल पीकर निर्वाह किया। तीसरे, चौथे और पाँचवे महीने में केवल

वायु पीकर समय विताया। ऊपर को वाँह उठाए हुए एक पैर पर खड़े हो कर वे पाँच महीनेाँ तक पञ्चाचर मन्त्र का एकाग्र चित्त से जप करते रहे।

एक दिन शिवार्चन कर वे आकाश की ओर ताकते हुए भगवान शक्कर का ध्यान कर रहे थे। उसी समय आकाश में एक सहस्र सूर्य के समान तेज दृष्टिगोचर हुआ। उस तेज के मध्य में जगन्माता पार्वतीसमेत भगवान शक्कर विराजमान थे। महादेवजी किरीट से सुशोभित हो रहे थे, त्रिश्चल हाथ में लिए हुए थे, व्याध्रचर्म अपने शरीर में लपेटे हुए थे, नाग का यज्ञोपवीत पहिने हुए थे, अनेक वर्ण के दिव्य पुष्पों की माला घुटनेंं. तक लटकती हुई अपूर्व शोभा दे रही थी। प्रमथ आदि गण उनके आस पास विद्यमान थे। सभी देवता, सभी मुनि और सभी विद्याधर हाथ जोड़ कर उनकी स्तुति कर रहे थे।

उनके तेज से कृष्णचाद्रजी की आँखें वन्द हो गई और वे हाथ जोड़े खड़े रह गए। उसी समय शिवजी ने समीप आकर कहा कि हे कृष्णजी! आप मेरे बड़े प्यारे हैं, आपने मेरी सैकड़ें वार आराधना की है। मैं आप से बहुत प्रसन्न हूं। तब कृष्णजी ने उनको आद्रसहित नमस्कार कर इस स्तोत्र से स्तृति करना प्रारम्भ किया।

नमोस्तु ते शाश्वतसर्वयोने ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति ।

तपश्च सत्यं च रजस्तमश्च त्वामेव सत्यं च वदन्ति सन्तः ॥ १ ॥

त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोग्निर्मनुर्भवः ।

धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभुः सर्वतो मुखः ॥ २ ॥

त्वचो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।

त्वया सृष्टमिदं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३ ॥

यानीन्द्रियाणीह मनश्च कृत्स्नं ये वायवः सप्त तथैव चाय्रयः ।

ये देवसंस्थास्तव देवताश्च तस्मात् परं त्वामृषयो वदन्ति ॥ ४ ॥

वेदाश्च यज्ञाः सोमश्च द्त्तिणा पावको ह्विः।
यज्ञोपगं च यत्किञ्चद् भगवांस्तद्संशयम्॥ ५॥
इष्टं द्त्तमधीतं च व्रतानि नियमाश्च ये।
हीः कोतिः श्री द्युति स्तुष्टिः सिद्धिश्चैव तद्पेणी॥ ६॥
कामः क्रोधो भयं लोभो मदः स्तम्भोथ मत्सरः।
श्राधयो व्याधयश्चैव भगवांस्तनवस्तव॥ ७॥
कृतिर्विकारः प्रण्यः प्रधानं वीजमव्ययम्।

मनसः परमा योनिः प्रभावश्चापि शाश्वतः ॥ ८ ॥ श्रव्यक्तः पावनोऽचित्तयः सहस्रांशुर्हिरएमयः । श्रादिर्गणानां सर्वेषां भवान् वै जीविताश्रयः ॥ ९॥ महानात्मामतिर्व्रह्मा विश्वः शम्भुः स्वयम्भुवः। वुद्धिः प्रज्ञोपलव्धिश्च संवित्ख्यातिर्धृतिः स्मृतिः ॥ १० ॥ पर्यायवाचकैः शब्दैर्महानात्मा विभाव्यते । त्वां वुध्वा ब्राह्मणो वेदात् प्रमोहं विनियच्छृति ।। ११॥ हृद्यं सर्वभूतानां चेत्रइस्वमृषिस्तुतः। सर्वतः पाणिगादस्त्वं सर्वतोत्तिशिरोमुखः॥ १२॥ सर्वतः श्रुतिमांह्नोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि । फलं त्वमसि तिग्मांशोर्निमेषादिषु कर्मसु ॥ १३॥ त्वं वै प्रभाविः पुरुषः सर्वस्य हृदि संश्रितः। अणिमा महिमा प्राप्तिरांशानो ज्योतिर व्ययः ॥ १४ ॥ त्वयि वुद्धिर्भिति लोकाः प्रपन्नाः संश्रिताश्च ये। ध्यानिनो नित्ययोगाश्च सत्यसत्वा जितेन्द्रियाः ॥ १५ ॥ यस्त्वां भ्रुवं वेद्यते प्रहाशयं प्रभुं पुराणं पुरुषं च विप्रहम्। हिरएमयं वुद्धिमतां परां गतिं स बुद्धिमान् वुद्धिमतीत्य तिष्ठति ॥ १६॥ विदित्वा सप्तसुदमाणि षडङ्गं त्वां च मूर्तितः। प्रधानविधियोगस्थ स्त्वामेव विशते वुधः ॥ १७ ॥

इस प्रकार स्तुति करने से शङ्कर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसी समय कृष्णुजी के ऊपर सुगन्धित पुष्पों की वर्षा होने लगी और सुखद घायु वहने लगी। शिवजी ने कृष्णुचन्द्रजी से कहा कि मैं आपकी भक्ति से परम सन्तुष्ट हूं। मैं आठ वर देने के लिए तयार हूं. आप को जो माँगना हो माँग लीजिए।

कृष्णजी ने नतमस्तक से प्रणाम कर कहा कि हे महाराज ! आपके दर्शनों हो से में कृतकृत्य हो गया । परन्तु आपकी आज्ञा के पालन करने के लिए में यह प्रार्थना करता हूं कि मेरी धर्म में दृढ वृद्धि हो, रण में सब शत्रुओं का विनाश हो, यश की वृद्धि हो, अलौकिक वल प्राप्त हो, योग साधन की ओर प्रवृत्ति रहा करे, आप में अटल भक्ति हो, आपका साजिध्य प्राप्त हो और एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हों।

शिवजी ने वड़ी प्रसन्नता के साथ ये सव चर दे दिए। तब पार्वती जी ने

कृपा कर कहा कि हे कृष्ण जी! मुक्त से भी आठ वर माँग लीजिए। मैं प्रसन्न तापूर्वक इन वरों को दूँगी।

कृष्ण जी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि हे मातः! आप मुसे ये वर दीजिए कि मुसे कभी ब्राह्मण के ऊपर कोप करने का अवसर प्राप्त न हो, पूज्य पितरोँ की प्रसन्नता हो, सौ छड़के होँ, सांसारिक सभी भोग सदा प्राप्त रहें, मेरे कुछ में कभी आपस में वैमनस्य न हो, माताएँ प्रसन्न रहें, हृद्य में सदा शान्ति रहे और सब भार्याओं के ऊपर मेरा समान स्नेह रहा करे।

जगदम्वा ने ये सव वर वड़ी प्रसन्नता के साथ दे दिए और कहा कि आप की १०१६ भार्याएँ आपसे सदा प्रेम रक्खें ती। आपके कुळके लोगोँ में सदा अटूट स्नेह बना रहेगा। आपके शरीर के सौन्दर्य की वृद्धि दिन दिन हुआ करेगी।

ऐसे वर देकर पार्वती जी और शिवजी अपने गणों के साथ अन्तर्धान हो गए और कृष्णजी तपस्या को समाप्त कर अपनी नगरी को चले गए और वहाँ सुखपूर्वक अनेक प्रकार के भोग भोगने लगे। समय आने पर जाम्बवती के अनेक पुत्र उत्पन्न हुए और सब प्रकार आनन्द हो गया।

भगवान् शङ्कर की दया से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। महाभारत में व्यासदेव ने कहा है कि शिवजी के समान संसार में कोई देवता नहीं। वे ही समस्त सांसारिक जीवों को सद्गति देते हैं। कल्याण और सुख देने में शिवजी से बढ़ कर कोई दयाछु नहीं। युद्ध करने में भी उनसे बढ़ कर कोई परा-क्रमी नहीं।

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः। नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे ॥ ११॥

# तिरसठवाँ रत्न

#### जगन्माता लक्ष्मी

एक बार सूर्यसुत रेवंत उच्चै:श्रवा अश्व पर चढ़ कर वैकुएठ को गए।
लक्ष्मोजी अपने मन्दिर में बैठी हुई उनके अश्व की मनोहारिणी गित को
देख रहीं थी। उसी समय विष्णु भगवान उनके समीप आए और उनसे पूछने
लगे कि तुम क्या देख रही हो। भगवान ने कई वार यही प्रश्न किया पर
लक्ष्मीजी इतनी तन्मनस्कता के साथ उस अश्व को देख रहीं थीं कि न तो उन्हें
भगवान के आने का पता लगा और न उनके प्रश्न का।

भगवान् को यह वात बुरी लगी और वे कुपित हो कहने लगे कि हे लक्ष्मी! तुम इस अश्वको देख कर मोहित हो गई हो और मेरे प्रश्न करने पर भी उत्तर नहीं देती हो इस लिए में तुम्हें यह शाप देता हूं कि तुम्हें भूलोक में जाकर अश्व योनि में जन्म लेना पड़ेगा। तुम वहुत चञ्चल हो और सभी जगह रमण करने लगती हो। इस लिए तुम्हारे चञ्चला और रमा ये दोनेंं नाम आज से हो जाएँगे।

यह शाप सुनते ही लदमीजी के तो प्राण सुख गए और वे बड़े करण स्वर से विलाप करने लगीं और बहुत डर के मारे कापती हुई हाथ जोड़ कर विनय-पूर्वक प्रार्थना करने लगीं। उन्हों ने कहा कि हे भगवन ! इस छोटे से अपराध पर आप इतना कोध क्यों करते हैं ? दयानिधे ! मैंने तो आप को इतना कोध करते कभी देखा हा नहीं। मेरे ऊपर तो आप सदा छुपा करते आए हैं। शत्रुओं के ऊपर कोप करना चाहिए। मुक्त दासी के ऊपर क्यों कोध आया ? हे आराध्य देव ! में आप के सामने ही प्राण छोड़े देती हूं। आप से अलग रह कर मेरा जीना असम्भव है।

लदमीजी के करुणापूर्ण वचन सुनकर करुणानिधि भगवान् को द्या आ गई और वे कहने लगे कि मेरा वचन अन्यथा तो हो नहीं सकता, केवल इतना कह सकता हूं कि कुछ काल तक तुम अश्वयोनि में रहोगी और तब मेरे समान ही एक पुत्र तुम्हारे उत्पन्न होगा। उस समय इस शाप से तुम्हारी मुक्ति होगी और फिर मेरे पास आ जाओगी।

भगवान की शाप से छदमी जी ने भूछोक में जाकर अश्वयोनि में जन्म छिया और वे कालिन्दी और तमसा के सङ्गम पर भगवान शङ्कर की आराधना करने छगीं।

कर्पूर के समान गौर शरीर वाले, पाँच मुखेँ से सुशोभित, नाग का यही

पवीत घारण किए हुए, ब्याघ्र चर्म घारी, कपालों की माला से विभूषित भगवान सदाशिव त्रिलोचन का अनन्य मन से एक हजार वर्षों तक ध्यान करती रहीं।

उनकी तपस्या से महादेव जी बहुत प्रसन्न हुए और छदमी जी के सामने
वृषभ पर आकड़ होकर पार्वतीसमेत आप और कहने छगे कि हे देवि ! आप
तो जगत् की माता हैं और भगवान् विष्णु की परम प्रिया हैं । आप मुक्ति-मुक्ति
देने वाले सम्पूर्ण सचराचर जगत् के स्वामी भगवान् की आराधना छोड़ कर
मेरा भजन क्याँ करती हैं ? वेद का वचन(१) है कि स्त्रियाँ को सर्वदा अपने पति
की ही उपासना करनी चाहिए। उनके छिए पति के अतिरिक्त और कोई देवता
ही नहीं है। पति कैसा भी हो स्त्री का आराध्य देव वही होता है। भगवान्
नारायंण तो पुरुषोत्तम हैं उनका भजन छोड़ आप मेरा भजन क्यों करती हैं ?

लद्मीजो ने कहा कि हे आशुतोष ! मुक्ते मेरे पतिदेव ने अश्वयोनि में जन्म लेने का शाप दे दिया है। इस शाप का अन्त पुत्र होने पर वताया है । परन्तु विना पित के संगम से पुत्र का होना असम्मव है। वे तो इतने दिनों से मुक्ते छोड़ कर वैकुएठ में निवास कर रहे हैं और मेरी सुध्र भी नहीं लेते। हे देव-देव! आप की उपासना मैंने इस लिए की कि मुक्ते यह ज्ञात है कि आप और वे मिन्न नहीं है। आप और वे एक ही हैं, केवल कप का मेद है यह वात मेरे पितदेव ने ही मुक्ते वताई थी। आप का और उनका एकत्व जान कर ही मैंने आपकी आराधना को। हे भगवन ! यिद आप मुक्त पर प्रसन्न हैं तो मेरा यह दुःख दूर कीजिए।

शिवजी ने कहा कि हे देवि! मेरी और विष्णु की एकता को वेदतत्ववेत्ता ब्रह्मझानी ऋषि जन और देवता भी नहीं जानते(२)। साधारण मनुष्य तो मेरी भक्ति करते हुए उनकी निन्दा करने छगते हैं और उनकी भक्ति करते हुए

<sup>(</sup>१)वेदोक्तं वचनं कार्यं नारीणां देवता पितः।
नान्यस्मिन् सर्वथा भावः कर्तव्यः किंदिवित् किंचित् ॥ २२ ॥
पितश्चश्रूषणं स्त्रीणां धर्म पव सनातनः।
याद्वशस्ताद्वशः सेव्यः सर्वथा श्चभकाम्यया ॥२३॥ देवी भा०६-१६
(२)पकत्वं च न जानन्ति देवाश्च सुनयस्तथा।
श्वानिनो वेदतत्वज्ञाः कुतकीपहताः किल ॥ ३४।।

मुक्ते गालियाँ देने लगते हैं। यह नहीं जानते कि मैं उनका सेवक भी हूं और स्वामी भी हूं "सेवक सखा स्वामि सिय पिय के" हे रमे ! आपने मेरा और उनका ऐक्य कैसे जान लिया ?

छदमीजी ने कहा कि एक वार मेरे पितदेव ध्यान कर रहे थे। ध्यान से निवृत्त होने पर मैंने उनसे कहा कि हे भगवन ! मैं तो आप ही को सब से बड़ा देव समस्तिती हूं। आप किस देव का ध्यान कर रहे हैं ? उन्होंने उत्तर दिया कि हे प्रिये! मैं महादेव जी का ध्यान करता हूं। मुक्त में और उनमें कोई मेद नहीं। शिवजी मेरे प्रिय प्राण हैं और मैं उनका परम प्रिय हूं। जो लोग हम दोनेंं को भेदभाव से देखते हैं वे नरक को जाते हैं \* हे भगवन्! तभी से मेरे हदय में दृढ़ भावना हो गई कि आप और मेरे पितदेव एक ही व्यक्ति हैं, केवल दो नाम और दो कप हैं। हे देव! इसी से मैंने आपकी आराधना की। आप मेरे ऊपर हुएा कीजिए।

जिवजी इस बात से बहुत प्रसन्न हुए और विष्णु देव से इस विषय में
प्रार्थना करने का बचन देकर विष्णु लोक को चले गए। शिवजी के कहने से
विष्णु भगवान अश्व का क्रण धारण कर लक्ष्मीजी के पास गए और उनके
संगम से एकवीर नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ उसी से हैहय वंश की उत्पत्ति
हुई। पुत्र उत्पन्न करने के अनन्तर ही शाप की निवृत्ति हो गई और वे वैकुएठ
में जाकर भगवान के सहवास का अनुप्रम सुख भोगने लगीं।

#शिवस्याहं प्रियः प्राणः शंकरस्तु तथा मम । डभयोरंतरं नास्ति मिथः संसक्तचेतसोः ॥ ४६ ॥ नरकं यान्ति ते नूनं ये द्विषन्ति महेश्वरम् । भक्ता मम विशालान्ति ! सत्यमेतद्ववीम्यहम् ॥ ४७ ॥ देवी० भा० ६—१८

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽत्तरः परमः स्वराट्। स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥ १०॥ स एव सर्वे यद्भूतं यद्य भाव्यम् सनातनम्। ब्रात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥ ११॥

कैवल्योपनिषत्

#### चौसठवाँ रतन

#### दानवीर राजा बलि

प्राचीन काल में देवताओं श्रीर ब्राह्मणों की ानन्दा करने वाला एक वड़ा पातकी कितव था। वह प्रतिदिन जुश्रा खेलता श्रीर उससे जो कुछ धन मिलता उसे परिक्रयों को प्रसन्न करने में व्यय करता। संसार में जितने बुरे व्यसन हैं वे सब उसमें वर्तमान थे।

एक दिन उसने अपने साथियों को धोखा देकर जुए में बहुत सा धन जीत लिया। उस धन से उसने सुन्दर गजरे, बहुमूल्ब अतर और सुगन्धित चन्दन खरीदे और इन सब को हाथों में लिए दौड़ता हुआ वेश्या के घर को चला। रास्ते में उसे ठोकर लगी और वह पृथ्वी पर जागिरा। गिरते ही उसे मूर्ज़ा आगई और कुछ देर तक वह उसी दशा में पड़ा रहा। उसके चन्दन, अतर और गजरे भूमि पर गिर कर मिट्टी में मिल गए। इन सब वस्तुओं में मिट्टी लग गई और वे वेश्या के काम के नहीं रह गए इस लिए उसने वे सब सुगन्धित द्रव्य शिवजी को चढ़ा दिए।

समय आने पर जब उसकी मृत्यु हुई तो यमदूत उसे यमलोक लेगए। वहाँ यमराज कहने लगे कि रे दुष्ट! तूने बड़े बड़े पातक किए हैं इस लिए तुमे नरक को कठिन यातनाएं भोगनी पड़ेंगी। उसने हाथ जोड़ कर कहा कि हे भगवन्! मैंने तो कोई भी पाप नहीं किया आप चित्रगुप्तजी से अच्छी तरह जाँच कराइये।

चित्रगुप्त ने खाता खोळ कर देखा और कहा कि तुमने पाप तो असंख्य किए हैं और उन सवका फळ भी पश्चात् भोगना पड़ेगा पर तुमने शिवजी को चन्दन आदि चढ़ाए हैं इस ळिए तुम्हें आरम्भ में तीन घएटे के ळिए इन्द्रपद मिलेगा।

उसी समय पेरावत हाथी आया और उसे इन्द्रलोक को लेगया।
गृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि हे महाराज! एक कितव ने विना अद्धा के
शिवजी को गन्ध पुष्प आदि चढ़ाए थे उसके पुष्य से उसे तीन घएटे के
लिए इन्द्रपद मिला है। इस लिए आप को उतने समय के लिए अपना पद छोड़ देना चाहिए। देखिए शिवजी की विना भिकत की आराधना से एक
महापातकी कितव को कितना भारी फल मिला। जो लोग अद्धा और भिक्त के साथ शिवजी की आराधना करते हैं उन्हें तो सायुज्य मुक्ति मिलती है।
यड़े बड़े देवता तो उनके किइर हो जाते हैं। शान्त चिक्त से शिव पूजा करनेवाले मजुष्याँ को जो सुख प्राप्त होता है वह ब्रह्मा, विष्णु आदि देवेाँ को भी नहीं मिळता। विषयळोळुप जीव इनकी आराधना का माहात्म्य नहीं जानते।

गृहस्पति के वचन सुन कर इन्द्र तो कहीं दूसरी जगह चले गए और कितव को इन्द्रासन मिला। उसी समय इन्द्राणी लाई गई पर शिवजी की पूजा के प्रभाव से कितव के हृदय में सद्बुद्धि उत्पन्त हुई और उसने उन्हें प्रणाम कर कहा कि आप मेरी माता हैं आप अपने मन्दिर को जाइये। उसने अगस्त्यमुनि को ऐरा-वत हाथी विश्वामित्र को उच्चै:अवा घोड़ा, वसिष्ठ को कामधेनु, गालव को चि-न्तामणि और कौण्डिन्य को कल्पवृत्त दे दिया। शिवप्रीत्यर्थ उसने ऋषियों को और भी अनेक दान दिए। इस सव दान-पुण्य के काम में तीन घण्टे समाप्त हो गए और वह किर यमलोक को पहुंचाया गया।

इन्द्र ने अपने यहाँ के सब रत्नों को गया जान यमराज से जाकर शिकायत की। यमराज ने कितव से कहा कि दान करने का पुर्य भूलोक में ही होता है। स्वर्ग में किसी को दान नहीं करना चाहिए। इस लिए हे मुद्र। तू दराइनीय है, तुमे नरक को दारुण यातना भोगनी पड़ेगी।

यमराज की वातें सुन कर चित्रगुप्त ने कहा कि हे महाराज ! इसने शिवजी के नाम पर ऐसे उत्तम ऋषियों को उतने महर्घ दान दिए हैं इसे नरक की यातना क्यों भोगनी होगी! शिव के नाम पर स्वर्गछोक मर्त्यछोक कहीं भी कुछ दिया जाय उसका अन्य फल मिलता है । इस कितव के जितने पाप थे वे सब शम्भु के प्रसाद से भस्म हो कर सुकृत हो गए। यमराज की समक्ष में यह बात आ गई और उन्हें। ने उस कितव से ज्ञाग माँगी।

उसी पुर्य के प्रमाव से उस कितव का जन्म परम भागवत प्रह्वाद के पुत्र महादानवीर विरोचन के घर में पुर्यवती सुरुचि के उदर से हुआ। विरोचन इतने बड़े दानी थे कि वृद्ध ब्राह्मण का कर धारण किए हुए इन्द्र के माँगने पर उन्होंने अपना सिर तक अपने हाथों से काट केदे दिया। विरोचन का यह दान तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। आज तक किव लोग उनके इस अपूर्व दान की प्रशंसा करते हैं।

उन्हीं महापुरुष विरोचन के गृह में इस कितव का जन्म हुआ और नाम

<sup>\*</sup> शिवमुहिश्य यहत्तं स्वर्गे मर्त्ये च यैर्नरैः । तत्सर्वं त्वच्चयं विद्यान्तिशिखुद्रं कर्म चोच्यते ॥ १०९ ॥ के० खं० १२ अ०

रक्खा गया विल । विल ने इ.पने पिता की मृत्यु की कथा सुनी झौर उन्हें वड़ा क्रोध आया । उन्होंने स्वर्गपर धावा बोल दिया और इन्द्रादि देवों को भगा कर स्वयं स्वर्ग का भोग करने लगे । पूर्व जन्मों के शिव पूजन के प्रभाव से इस जन्म में भी उनकी दान देने की छोर वड़ी प्रवृत्ति थी । दान में वे अपना सर्वस्व देने के लिए भी सदा तत्पर रहते थे।

देवों का दुःख देख कर अगवान् विष्णु ने वामन का कप धारण कर बिल से भित्ता माँगी और विल ने त्रेलोक्य का राज्य और अपना आधा शरीर दान में दे डाला । उस दान का आज तक विद्वान् लोग कीर्तन करते हैं। दानवीरों की जब गणना होने लगती है तो सब से पहिला नाम राजा बिल का आता है।

उस मिट्टी में मिले हुए चन्दन श्रादि के चढ़ाने से एक महापातकी जुआड़ी जगत्प्रसिद्ध राजा विल हो गया। जो लोग पूर्ण भिक्त श्रौर श्रद्धा के साथ गन्ध, पुष्प, फल श्रदि से महें ह्वर की पूजा करते हैं वे तो साचात् शिव के समीप पहुंच जाते हैं। शिव से वढ़ कर पूजनीय देव संसार में दूसरे हैं नहीं। लुले, लँगड़े, श्रन्धे, विहरे जाति-हीन, चाएडाल, श्वपच, श्रन्त्यज्ञ श्रादि में से कोई भी हो यदि शिव की भिक्त करे तो श्रवश्य परम गित को प्राप्त हो सकता है। परमार्थ के जानने वाले विद्वान् महेश्वर का सदा चिन्तन किया करते हैं। शिव की श्राराधना के विना जितना काम किया जाता है वह सब श्रग्रभ होता है। इस लिए सदाशिव की सदा पूजा करनी चाहिए। मुमुक्षु जनों को लिङ्गकपी महादेव की श्राराधना करनी चाहिए क्योंकि उनसे वढ़ कर भुक्ति और मुक्ति देने वाले श्रन्य कोई भी देवता नहीं हैं। स्कन्द पुराण में लिखा है:—

तस्मात् सदाशिवः पूज्यः सर्वेरेव मनीषिभिः ।
पूजनीयो हि सम्पूज्यो ह्यर्चनीयः सदाशिवः ॥ ६८॥
लिङ्गरूपो महादेवो ह्यर्चनीयो मुमुक्षुभिः ।
शिवात् परतरो नास्ति भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥ ८२॥
केदारखण्ड १६ अ०

## पेंसठवाँ रतन

#### रावण

एक वार रावण अपने सचिवों को साथ लिए पुष्पक विमान पर चढ़ा हुआ त्रेलोक्य के विजय करने की अभिलाषा से घूमता हुआ कैलास पर्वत पर पहुंचा। वहाँ पहुंचते ही उसका विमान रुक गया। पुष्पक विमान की गति को रुकते देख कर रावण को आश्चर्य हुआ और वह उतर कर इसका पता लगाने लगा।

उसी समय नन्दीरवर उसके समीप पहुंचे और कहने लगे कि हे रावण! इस समय पर्वत पर भगवान शङ्कर कीड़ा कर रहे हैं, ऐसे समय में कैलास के ऊपर होकर कोई नहीं जा सकता है। इस लिए तुम लौट जाओ और उधर जाने का प्रयत्न मत करो।

रावण नन्दीश्वर के वचन की उपेक्षा कर कैलास के समीप चला गया श्रौर कहने लगा कि इस पर्वत ने मेरे विमान की गति रोकी है इस लिए इस पर्वत को उखाड़ कर फेक दूँगा। ऐसा कह कर उसने श्रपनी मुजाश्रों से कैलास को उठा लिया। उसके हिलने से शिवजी के गण काँपने लगे श्रौर पार्वतीजी डर कर शिवजी के समीप आगी हुई गई।

महादेवजी ने कैलास पर्वत को चलायमान देख कर अपने पैर के अगुठे से उसे द्वा दिया। रावण की भुजाएँ चरचरा उठीं। वह मारे क्रोध के और भुजाओं की पीड़ा से महाराव कर उठा। उस विराव से तीनों लोक कँप गए, समुद्रों में तूफान आ गया। सभी पर्वत डिग गए। यत्ताँ, विद्याधरों और सिद्धों को परम आश्चर्य हुआ। संसार भर में हाहाकार मच गया।

रावण के सब सिंघाव कहने छगे कि महाराज! श्राप नीलकएड भगवान् शङ्कर को प्रसन्न कीजिए उनकी शरण गए विना कल्याण नहीं होने का। श्राप नम्रतापूर्वक उनकी स्तुति कीजिए। वे भगवान् बड़े छपाछु हैं, प्रसन्न होकर श्रवश्य छपा करेंगे श्रीर इस दुःख से श्राप को मुक्त कर देंगे।

तव राज्ञसेन्द्र रावण ने एक एकान्त गुफा में शिवजी का लिङ्ग स्थापित किया और भक्तिपूर्ण हृदय से स्तुति करने लगा।

जटाटवीगळजळप्रवाहपावितस्थले गलेवळम्ब्यळंवितां भुजंगतुङ्गमाळिकाम् । डमहुमहुमहुमन्निनाद्वहुमर्वयं चकार चराडताराडवं तनोतु नः शिवः शिवम् ॥१॥ जटाकटाहसंभ्रमभ्रमनिलिम्पनिर्भरी—विलोळवीचिवस्नरी विराजमान मुर्द्धनि ।

धगद्धगद्धगज्ज्वल्ल्लाटपद्दपावकेकिशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिच्यं मम ॥ २ ॥ धराधरेन्द्रनन्दिनी विलासवन्धुवन्धुर-स्फुरद्दूगन्तसन्ततिप्रमोद्मानमानसे । कृपाकटाच्रधोरणीनिरुद्धदुर्धरापिद कचिद्दिगम्बरे मनो विनोद्मेतु वस्तुनि ॥३॥ जटाभुजंगपिंगलस्फुरत्फणामणिप्रभाकद्म्वकुंकुमद्रवप्रलिप्तद्गिवधूमुखे । मदान्धसिन्धुरासुरत्वगुत्तरीयमेदुरे मनो विनोदमदुभुतं विभर्तुं भूतभर्तरि ॥४॥ सहस्रलोचनप्रभृत्यशेषलेखशेखरप्रस्तधूलिधोरणी विधूसरांघ्रिपीठभूः। भूजंगराजमालया निवद्धजाटजूटकः थ्रिये चिराय जायतां चकोरवन्धुरोखरः ॥५॥ ळळाटचत्वरज्वळद्धनञ्जयस्फुळिंगया निपीतपंचसायकं नमन्निळिएनायकम्। सुधामयूखरेखया विराजमानशेखरं महः कपालिसम्पदे सरिजाटालमस्तु नः ॥६॥ करालमालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्ज्वलद्धनञ्जयाद्वतीकृतप्रचएडपंचसायके । धराधरेन्द्रनन्दिनी कुचाम्रचित्रपत्रकप्रकरणनैकशिलिपनि त्रिलोचने रतिर्मम ॥७॥ नवीनमेघमग्डली निरुद्धदुर्घरस्फुरत्कुहूनिशीथिनीतमः प्रवन्धवद्धकन्धरः। निलिम्पनिर्भरीधरस्तनोतु कृत्तिसुन्दरः कलानिधानवन्धुरः श्रियं जगदुधुरन्धरः ॥८॥ प्रप्रज्ञनीलपङ्कज्ञप्रचंचकालिमच्छ्रटाविडंविकएठकन्दली रुचिप्रवन्धकन्धरम्। स्मर्चिद्धदं पुरच्छिदं भवचिद्धदं मखचिद्धदं गजचिद्धदांधकचिद्धदं तमन्तकचिद्धदं भजे।९। श्रखर्वसर्वमंगला कलाकद्म्वमंजरी रसप्रवाहमाधुरी विज्नमणामधुत्रतम्। स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं गजान्तकान्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे १०॥ जयत्यद्भविभ्रमद्भृतद्भुजंगमश्वसद्विनिर्गमकमस्पुरत्करालभालहृब्यवाट्। धिमिधिमिधिमिध्वनन्मृद्गतुंगमंगलध्वनिक्रमप्रवित्तप्रचएडताएडवः शिवः॥११॥ द्ववद्विचित्रतरुपयोभु जंगमौक्तिकस्त्रजोर्ग रिष्ठरत्नलोष्टयोः सुंहद्विपचपचयोः। तृणारविन्द्चक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः समप्रवर्तिकः कदा सदा शिवं भजाम्यहम्॥१२॥ कदा निर्लिपनिर्भरी निकुंजकोटरे वसन् विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरास्थमजलि वहन्। वलोललोललोचनं ललामभाललयकं शिवेतिमन्त्रसुचरन्सदासुखीभवाम्यहम् ॥१३॥ निल्लिम्पनाथनागरी कद्म्वमौलिमल्लिका—निगुम्फनिर्मरत्तरन्मधूष्णिका मनोहरः। तनोतु नो मनोमुदं विनोदिनीमहर्निशं पारश्रियः परं पदं तदंगजत्विषां चयः ॥१४॥ प्रचएडवाडवानलप्रभाग्रुभप्रचारिणी महाष्ट्रसिद्धिकाामनीजनाबहूतलल्पनः। विमुक्तवामलोचनाविवाहकालिकव्वनिः शिवेतिमंत्रभूषणाजगज्जयाय जायताम्॥१५ निराहार रह कर अपने सब सिववों के साथ वठे हुए राजसेन्द्र रावण के सामन इस प्रकार आकाश वाणी हुई—"हे दशकराठ ! तुम्हारे पूजन से में बहुत प्रसन्न हूं, इससे तीनों लोक तुम्हारे वश में रहेंगे। इस लिङ्ग में में सदा निवास करूँगा। जो मनुष्य इस लिङ्ग की भक्ति युक्त चिच्न से पूजा करेंगे, उन्हें शत्रु लोग युद्ध में कभी पराजित न कर सरेंगे और मेरी कृपा से अन्त में वे सिद्धि को प्राप्त करेंगे—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

इस प्रकार राज्ञ सेन्द्र रावण ने 'शिवतागडव-स्तुति' द्वारा, देवेश शंकर का भिक्तपूर्वक पूजन, स्तुति, जागरण आदि किया। पन्द्रह दिनों तक निरन्तर शिव-पूजन वरने पर आकाशवाणी हुई—"हे महावाहो, दशानन! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं। मेरी प्रसन्नता से जैलोक्य तुम्हारे वश में हो गया। अब मैं इस लिंग में निवास करता हूं और जब तक सूर्य्य चन्द्रमा पृथ्वी पर रहेंगे, मैं तब तक इसमें रह कर अपने भक्तों को सद्गति देता रहूंगा। हे राज्ञ-सेन्द्र! जो मनुष्य भिक्त-भाव से इस लिंग की आराधना करेंगे, वे संसार में विजयी होंगे—उनके शत्रु स्वयं वश में हो जावेंगे। अन्त में अजेय होकर हमारे परम धाम (शिवलोक) को प्राप्त करेंगें?। यह सुन, शिवजी से अनुचम वर पा, सन्तुष्ट होकर, रावण जैलोवय-विजय की इच्ला से पुष्पक-विमान पर आकृद्ध हो, मन ही मन आश्रुतोष भगवान् शिव की स्तुति करता हुआ, अपनी प्यारी पुरी (लङ्का) की ओर चला गया। क्योंकि शंकर के समान शिव्र मुक्ति देने वाला कोई दूसरा देवता नहीं है—जिसका नाम ही शंकर (कल्याण-कर्त्ता) है!

स्कन्दपुराण में रावणद्वारा संस्थापित ''रावणेश्वर महादेव'' का बड़ा

माहात्म्य लिखा है:--

अत्र सन्निहितो नित्यं स्थास्याम्यहमसंशयम् । अथैतत्पूज्ञियष्यन्ति छिङ्गं भक्तियुता नरः ॥२३॥ अजेयास्ते भविष्यन्ति शत्रूणां राक्षसेश्वरः । यास्यन्ति परमां सिद्धिं मत्प्रसादादसंशयम् ॥२४॥ (प्रभास खंड, श्रध्याय १२३)

## शिवभक्त वाणासुर

वाणासुर राचसराज विल का सबसे वड़ा औरस पुत्र था। यह बलवान्, बुद्धिमान्, सत्यवादी तथा दान देने वालों में नामी था। यह परम शिवभक्त होता हुआ, शोणितपुर में निवास करता था। भगवान् शंकर की कृपा से यह बैलोक्य-विजयी हुआ।

यह बड़ा प्रतापी असुर हुआ। इसने दस हजार वर्षों तक तप किया। एक वार इसके तप से ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और इसे तीन नगर दिये। उनमें एक सोने का, दूसरा चाँदी का और तीसरा लोहे का था। वे सव नगर एक ही में मिले से प्रतीत होते थे। इसलिये उनका नाम "त्रिपुर" हो गया था। वे आकाश में उड़ा करते और इसीकी इच्छा पर चला करते थे। उनका मेदन करना असम्भव था। वे कभी तो दिखाई देते थे, कभी छुत हो जाते थे। जहाँ वे नगर गिरते थे वहाँ का देश चौपट हो जाता था। मनुष्य, पशु, पन्नी सभी दव कर मर जाते थे।

वणासुर सुन्दर स्त्री, उत्तम रत्न आदि जिन वस्तुओं को पाता, उठा ले जाता था। स्वर्ग से देवों को भगाकर उसने अपना साम्राज्य स्थापित कर रक्खा था। संसार भर उसके आत्याचारों से पीड़ित था। देवता लोग उसे न तो अस्त्रों से मार सकते थे, न शस्त्रों से ही। उसकी शक्ति अपरिमित थी।

एक बार सब देवता मिल कर भगवान् शङ्कर के पास गये और विनयपूर्वक स्तुति करने लगे। शिवजी ने उनके आने का कारण पूछा। उन्होंने वाणासुर द्वारा दिये गये दुःख का समाचार सुना कर कहा—"महाराज! आपके अतिरिक्त हम लोगों की रत्ता करने वाला दूसरा कोई नहीं है। हे भगवन्। ऐसा उपाय कीजिये–जिससे सभी देवता, गन्धर्व और तपोधन ऋषि लोग सुखी हों।"

शिवजी ने देवताओं को समका-बुक्ता कर अपने अपने स्थान पर भेज दिया और नारद का स्मरण किया । स्मरण करते ही नारद आ पहुँचे और स्मरण करने का कारण पूछने छगे। महादेवजी ने कहाः—"मुने ! त्रिपुर में स्मियाँ बड़ी साध्वी और तेजस्विनी हैं। उनके तेज से त्रिपुर का भेदन करना असम्भव है। जब तक उनके उस शुद्ध भाव में परिवर्तन न होगा, तब तक विजय प्राप्त करना असम्भव है । इसिछिये हे नारद ! आप वहाँ जाइये और उनके पातिव्रत्य के भाव में परिवर्तन कीजिये।"

नारद्जी शिवजी को नमस्कार कर, त्रिपुर की श्रोर चल दिये श्रौर वहाँ जाकर उन स्त्रियोँ को श्रनेक प्रकार के व्रत तथा पूजन के विधान बताये। दूसरे दूसरे देवताओं की उपासना करने से उनके सतीत्व में कुछ कमी हो गई और उसके पश्चात् जब नारद जी वहाँ से चलने लगे तब अपने सौन्दर्य तथा तेज से उनका मन हर ले गये। उनके जाते ही उन स्थियोँ की कान्ति नष्ट हो गई, वे एक दम निष्प्रभा हो गई। अब क्या था, त्रिपुर का भी महत्व जाता रहा।

नारदजी के मुख से सब वृत्तान्त सुनकर, भगवान रुद्रने त्रिपुर के दाह का निश्चय किया और अपने धनुष की टङ्कार से तीनों लोकों को हिला दिया। क्रोध से आँखें लाल कर उन्होंने एक वाण छोड़ा। वाण के छोड़ते ही त्रिपुर में आग लग गई और वहाँ से वड़े बड़े पर्वत, वृत्त, गृह आदि धड़ाधड़ पृथ्वी पर गिरने लगे। सुन्दर उद्यान जलकर भस्म हो गये। सब जगह हाहाकार मच गया। वहाँ की सब लियाँ और पुरुष चिल्लाने लगे।

वाणासुर का घर प्रचएड श्रिप्त से जलने लगा। उस समय उसे अपने किये हुए पातकों पर पश्चात्ताप होने लगा। वह रो रो कर कहने लगाः— "हा! मुक्त पापीने तीनों लोकों का सत्यानाश कर दिया। श्रसंख्यों गायों श्रीर ब्राह्मणों की हत्या की। मठों श्रीर मन्दिरों को तोड़ फोड़कर मिट्टी में मिला दिया। ऋषियों के श्राश्रम उजाड़ डाले। इन सब महापातकों का फल मेरे सिवाय श्रीर कौन भोगेगा ? इस समय माता पिता, वन्धु- बान्धव, पुत्र-कलत्र कोई सहायक नहीं है। भक्तजनों के कप्टों को हरण करने वाले श्रीशङ्कर भगवान् ही अब हमारी रत्ता कर सकते हैं, दूसरा नहीं। श्रतः उन्हों की शरणमें जाना चाहिये।" ऐसा विचार, बाणासुर श्रपने सिरपर श्रिवलिङ्ग रखकर श्रपने घर से लड़खड़ाता हुश्रा बाहर निकला श्रीर गद्गद वाणी से भगवान् महेश्वर की स्तुति करने लगा—

शिव-शङ्कर! सर्वहराय नमो भवभीति-भयार्ति-हराय नमः।
कुसुमायुध-देह-विनाशकर! जन-मुक्ति-प्रदाय शिवाय नमः॥१॥
स्वं विष्णुस्त्वं जगन्नाथो ब्रह्मक्रपः सनातनः।
इन्द्रस्त्वं देवदेवेश सुरनाथ! नमोऽस्तुते॥९॥
स्वं ज्ञितिर्वरुणश्चैव पवनस्त्वं हुताशनः।
त्वं दीज्ञा यजमानश्च ह्याकाशं सोम पव च॥१०॥
त्वं सूर्यस्त्वं तु विजेशो यमस्त्वं गुहरेव च।
त्वया व्याप्तं जगत्सवे त्रलोक्यं भास्वता यथा॥११॥
(इत्यादि)

इस प्रकार भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए वाणासुर ने शिवजी से प्राथना की कि हे द्यानिधे ! यदि श्राप श्रपने कोपानल में जलाना ही चाहते हैं तो इस शिवलिङ्ग की श्रवश्य रक्ता कीजिये। भगवन् ! इस लिङ्ग की मैंने वड़ी श्राराधना श्रौर पूजा की है। यह मुक्ते प्राणों से भी श्रधिक प्यारा है। हे महेश्वर ! यदि श्राप मेरा 'वध' ही करना चाहते हैं तो इतना वर श्रवश्य दीजिये कि, श्रापकी भक्ति मुक्ते प्रत्येक जन्म में प्राप्त हो। मुक्ते चाहे पश्च की योनि मिले, चाहे पत्ती होना पड़े, चाहे पत्तों का सहवास करना हो, परन्तु श्रापमें मेरी श्रचल भक्ति हो।

बाणासुर द्वारा की गई स्तुति सुनकर शिवजी वहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—''हे दानवेन्द्र! अब तुम डरो मत। तुम्हें अब किसी का भय नहीं रह गया। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भेरे लोक में निवास करो अथवा अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र तथा वन्धुओं के साथ सांसारिक सुखों का उपभोग करो।"

पेसा वर देकर महादेवजी ने उस श्रिश को रोक दिया। तीनों पुरेँ में से एक पुर वच गया था। अन्य दो में से एक तो श्रीशैं ए पर भस्म होकर गिर गया, दूसरा अमरकएटक पर्वत पर चार चार होकर गिर गया। वहाँ पर वृष्माकृ साचात् शिव जी पार्वती को साथ लेकर निवास करने छगे। इसी से अमरकएटक के नाम का मनसे भी स्मरण करने पर चान्द्रायण वत करने से भी अधिक पुण्य प्राप्त होता है। इस पर्वत पर स्थित शङ्कर भगवान् के दर्शन करने वाले भक्तजन शान्त-सदाशिव-सूदम-श्रतीन्द्रिय-ज्योति में छय हो जाते हैं। स्कन्दपुराण में छिखा भी हैं:—

मनसापि स्मरेद्यस्तु भक्त्या ह्यमरकण्टकम् । चान्द्रायणाधिकं पुण्यं स लभेन्नात्र संशयः ॥ ११२॥ परं सदाशिवं शान्तं सूक्ष्मं ज्योतिरतीन्द्रियम् । तस्मिन्याति लयं धीरो विधिना नात्र संशयः ॥११३॥ (स्क॰ पु॰ रेवाखण्ड २८ अ०)

# \* ब्रह्मिषं खएड \*

## महर्षि वाल्मीकि जी

श्रादि कि महर्षि वाल्मीकि को भला कोन नहीं जानता? जगत्प्रसिद्ध श्रीवाल्मीकीय रामायण के रचियता कविश्वर श्रीवाल्मीकि मुनि को, एक समय यह में वेदसम्बन्धी विवाद होने पर श्रिष्ठाहोत्री मुनियों ने शाप दिया कि "तुम ब्रह्म हस्यारा हो"। उन लोगों के शाप से ही ब्रह्महत्या के पाप में लिप्त होकर उन्होंने बहुत दिनों तक व्याधा का काम किया। पश्चात् भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाले श्राश्चतोष भगवान् शङ्कर की शरण में गये श्रीर उनकी श्राराधना से सब पापों से शीघ्र ही मुक्त हो गये। भगवान् महेश्वर ने मुनि पर प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया कि—"जाबो, तेरी विमल कीर्ति तोनों लोक में श्रमर रहेगी श्रोर तुम्हारा महाकाव्य संसार में श्रद्धितीय तथा श्रादर्श होगा।" भगवान् शंकर के अन्तर्थान होते ही वाल्मीकिजी को एक श्रद्भुत प्रकार का ज्ञान उत्पन्न हो गया श्रीर उसी समय शिवमक्त श्रीरामचन्द्र का यशोगान जो उन्होंने किया, वह संसार के सामने हैं! विद्वानों का कहना है कि, भगवान् शंकर के श्रनुग्रह से वाल्मीकि मुनि के मुखारविन्द से सर्वप्रथम निम्नलिखित श्लोक स्वयं निकल श्राया श्रीर तभी से इस छन्द की सृष्टि हुई। देखिये, कैसा सुन्दर पद्य है:—

'मा निषाद ! प्रतिष्ठान्त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौञ्चिमथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥" (सहा० भा० अनु० ४० १८)

idle the burney of



#### महर्षि गालवसुनि

महामुनि विश्वामित्र के प्रिय शिष्य गालचमुनि जब समस्त विद्यात्रों में पारङ्गत होकर, गुरु की ब्राह्मा से अपने पिता के दर्शनार्थ घर गये, तब वहाँ पहुँचने पर उनकी विधवा माता ने कातर स्वर से उनके पिता के स्वर्गवास का वृत्तान्त सुनाया। ज्ञानी गालवमुनि पितृ-वियोग से दुःखित हो तथा माता को ग्रनाथ देखकर वड़े चिन्तित हुए। मनही मन अपने जीवन को धिक्कारने लगे—"हाय! पुत्र का वह जीवन, उसकी वह विद्या, उसका वह यशा-गौरव तथा धन-पेश्वर्य सब किस काम का है—जो गुरुजनों, विशेषकर पिताकी सेवा में न लगे। में बड़ा हो अभागा हूं। पिताके दर्शन तक मुक्त अभागे को दुर्लम हो गये।" बारम्बार चिन्तना करके गालवमुनि ने गुरु का समरण किया और हृद्य में धैर्य धारण करके पितृदर्शन का हुठ पकड़ा।

माता से आज्ञा माँग कर किसी एकान्त स्थान में जा, योगसाधना द्वारा ज्ञानी गालवमुनि योगीश्वर आग्रुतोष भगवान् शंकर का ध्यान करने लगे। थोड़े ही दिनों की कठिन तपस्या से शिवजी प्रसन्न हुए और साद्वात् अपना दर्शन देकर वोले—"हे विप्र! तुम अपने घर जावो, तुम्हारी मनोकामना शीघ्र सिद्ध होगी और तुम अपने पिता का दर्शन पाकर अमर होवोगे"।

गालवमुनि उपरोक्त, वर पाकर बड़े प्रसन्न हुए और अपने घर को छोट पड़े। घर पहुंचते ही, अपने पिता को इष्टी करके घर से द्वारपर आते हुए देख, गालव बड़े विस्मय में पड़े और सट पिता के चरणों पर गिर कहणाश्रु वहाने लगे। उनके पिताने उन्हें उठाकर हृदय से लगाया और सिर सुंघते हुए समस्त अंगें पर अपने कोमलकरों से स्पर्श किया। पिताने गद्गद स्वर से कहा—"प्रिय पुत्र! बड़े आनन्द को वात है कि तुम पढ़ लिखकर यहाँ आगये और मैंने अपनी आँखों से तुम्हें देखकर पुत्र सुख का अनुभव किया। तुम्हारी शिवभक्ति सराहनीय है। क्योंकि:—

"एतदेवेषु दुष्प्रापं मनुष्येषु न लभ्यते । निर्विद्ना निश्चला रुद्रे भक्तिरव्यभिचारिणी ॥"

( महा० भा० अनु० प० ६५ अ० १७)

#### गृत्समद् ऋषि

एक वार गुत्समदऋषि-जो बृहस्पति के समान ती ब्र वृद्धि वाले थे। किसी सहस्रों वर्ष में पूर्ण होने वाले यह में 'रथान्तर साम' (वेद ) का उच्चारण करते समय स्वर-भंग देखकर चाक्षुषमुनि के पुत्र वरिष्ठमुनि ने गृत्समद से कहा:— "हे द्विजश्रेष्ठ! रथान्तर साम का उच्चारण श्रापसे ठीक नहीं हो रहा है, अतः श्राप मिथ्या दुराग्रह का परित्याग कर, श्रवसे भी विचारपूर्वक शुद्ध २ उच्चारण करें—-जिससे कुछ फल हो, पेसे उच्चारण से यह का फल कदापि नहीं मिलता! परन्तु जब इस उपदेश पर दुराग्रही विद्वान् गृत्समद ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया श्रीर पूर्ववत् उच्चारण करना ही अपना पाण्डित्य सभक्ता, तब मुनिवर वरिष्ठ से सहा न गया श्रीर शत्यन्त कोधित हो, गृत्समद को शाप दिया—"पे विद्याभिमानी! यह का फल पाने का मिथ्याभिलावी! गृत्समद! तुम दुःखी होकर, सदा दूसरों से उरता हुश्रा, बन-बन में व्यर्थ घूमा करोगे श्रीर ग्यारह हज़ार श्राठ सो (११६००) वर्ष तक जल-वायु-रिहत, निर्जन भयद्भर वन में—कण्टकमय यहांग-वृत्तों से शुन्य, हिंसक जन्तुश्रों से भरे हुए, विकट वनमें तुम मृग पश्च वन कर इधर-उधर मारे २ फिरोगे।" मुनि के शाप से वह मृग बन कर वन में रहने लगा।

तद्नन्तर जब उसके मनमें भगवान शंकर का ध्यान आया, तब उसी समय संयोगवश मृगतजु छोड़, मजुष्य का शरीर पाकर वह आशुतोष भगवान शङ्कर की शरण में जा, भजन करने लगा। थोड़े ही दिनों में सदाशिव भगवान सन्न होकर ब्राह्मण से वोले—"हे विप्र! अब तुम निश्चिन्त हो, अजर-श्रमर बनकर मेरे लोक को जाओ, अब तुमें किसी प्रकार की श्राधि-व्याधि नहीं सतावेगी। जिस यह फल के लिये तुमने पहले रथान्तर साम का गान किया था, अब उसका फल मेरी कृपा से तुमें अवश्य मिल जायगा।"

यह वचन सुनते ही गृत्समद मुनि प्रसन्नचित्त हो, गद्गद कराउ से भग-वान् नीलकराठ की स्तुति करते हुए, कैलास धाम में पहुँचे और जीवन का फल पाकर 'अमर' हो गये। ठीक है:--

अचिन्त्य एव भगवान् कर्मणा मनसा गिरा । महापापापपापाघकोटित्रस्तोऽपि मुच्यते ॥

( महा॰ भा॰ अनु॰ प॰ अ॰ १८)

# श्चित्रभक्त खुपर्ण (जाबाछि) सुनि

विन्ध्याचल पर्वत के दिल्ला भाग में श्रमरक एटक पहाड़ एक ऐसा श्रद्भुत स्थान है—जहाँ से बारों दिशाशों में निद्याँ निकली हैं। उसी भाग में मनुष्यों को बारों पदार्थ देने वाली विमल खिलला अगवती नर्मदा जी की निर्मल धारा वह रही है। यह प्रान्त वड़ा ही पिवत्र एवं खुहाबना है। प्राचीन समय से ही यह पुएय भूमि मुनिजनों को कौन कहे—देवताशों के मन को भी हरने वाली कही गई है। कहा जाता है कि, इसी पिवत्र धाम में श्रह्माजी ने कभी 'श्रीत्रामिण' नामक यह किया शौर राजिंव दाधीचि ने शिवजी को प्रसन्न करने के निमित्त यहीं पर महायह ठाना था। इसी स्थल पर सिद्धेश्वर श्रीर चतुष्के श्वर नामक दो ज्योतिलिङ्ग भी स्थापित हैं—जिनके भजन पूजन से शीन्न ही सिद्धि प्रप्ति होती है।

प्राचीन काल में ब्रह्माजी के 'सुपर्ण' नामक एक पुत्र महा ज्ञानी एवं जितेनिद्रय हुए। उनकी 'पुरुह्नता' नाम की आर्या थी। सुपर्ण मुनि नैमिषारएय में
रह कर कन्द-सृल ग्रीर फलों के ग्रहार तथा मृगचर्म की शय्या एवं केला के
छाल या भोजपत्र का वस्त्र धारण कर, सन्तोषपूर्वक त्रिकाल सन्ध्या-हवनादि
कृत्य करने वाले, वेदों के पढ़ने में तत्पर, स्मृति ग्रीर शास्त्र पुराणों में कहे हुए
मोक्त के उपायों का विचार किया करते थे। यह सव कुछ करते हुए भी सुपर्ण
मुनि ग्रुष्क ज्ञानवादी थे। देवार्चन या किसी देव में श्रद्धा-भक्ति नहीं रखते थे।
केवल ग्रुष्क ज्ञान को मानने वाले होने के कारण बाहरी शौच-श्राडम्बर एवं
हवा पीकर, पत्ती खा-खाकर समय काटनाही उनकी तपस्या के मुलाधार थे।
स्त्री रहते भी श्रपनो मिथ्या धाडम्बर के कारण ( ज्ञृतौ भार्यामुपेयात ) ऋतुकाल में भी स्त्री का सत्कार न करते थे।

एक बार पुरुद्वता ने अपने पितदेव को प्रसन्न करके कहाः—''स्वामिन्! इस ऋतुकाल में आप भुक्तको काम-सुख अपीय करें—जिससे वंशपरम्परा को चलाने वाला, पिएडप्रदाता, हम लोगों की वृद्धावस्था का एकमात्र सहायक, उभयलोक में आनन्द वढ़ाने वाला पुत्र उत्पन्न हो।"

भार्या का वचन सुनकर घुनि वोलेः—"प्रिये ! वात तो तुमने श्रच्छी कही; किन्तु श्राज है श्रमावास्या । हे भद्रे ! इस तिथि-योग में द्रपति संयोग होना— ग्रयोग्य है। देखो मैंने देवताओं के हजार वर्षतक दुष्कर तप किया; परन्तु कुछ फल न हुआ। अभी मेरे देखते २ च्यामात्र में शिवाराधन तथा रेवा (नर्मदा) के स्नानमात्र से यह ानषाद स्वर्ग को चला गया। अतः मेरे तप को धिकार है!

इसी बीच मुनिपर हँसकर निषाद की स्त्री बोली-हे विप्रषें! विषाद को छोड़ों में सत्य कहती हूं। तुम केवल वायुमात्र भन्नणकर निष्फल कलेश को प्राप्त हुए हो। तब जाबालि बोले-हे ग्रुचिस्मिते! निषाद रूप धारण करने वाली तुम कौन हो? ग्रानुग्रह करके तुम धर्म को कहो।

तब निषादी बोली-हम दोनों पित-पत्नी परस्पर शापयुता हो, इस तीर्थ पर्व शिवपूज के माहात्म्य से पाप से लूट गये। इससे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम शिवजी के श्राराधन में तत्पर होवो श्रीर उन्हीं के वास्ते होम, जप, श्रादि कर्म, वरावर करों। जावालि भी श्रपने तप को छोड़कर शिवजी के श्राराधन में तत्पर हुए श्रीर थोड़े ही काल में ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए।।

> "त्यक्त्वा स्वकल्पं जाबालिः शिवाराधनतत्परः । आचिरेणैव कालेन शिवलोकमुपागतः" ॥ ३३ ॥ (स्कन्द पु० रे० खं० ३ ४०)

# सुधर्मा एवं धुइमा

द्तिण दिशा में देविगिरि पर्वत के समीप भारद्वाज कुल में उत्पन्न सुधर्मा नामक एक तपस्वी ब्राह्मण निवास करते थे। वे सदा पठन-पाठन में अपना समय व्यतीत करते थे। त्रिकाल सन्ध्या, देवार्चन एवं अभिहोत्र भी किया करते थे। वे बड़े धनी थे और अतिथियों के सत्कार में पूरा सौजन्य प्रकट करते थे। सत्कार्य्य में ही उनका पूरा समय और धन व्यतीत होता था।

उनकी पत्नी का नाम सुदेहा था । सुदेहा भी श्रपने पित के समान ही धर्मपरायणा और गुणवती थी। पित की सेवा करना श्रौर उनकी श्राज्ञा की यथावत् पालन करना ही उसका एकमात्र कार्य्य था। इन लोगों का सत्कार्य में समय ब्यतीत करते, श्रायु का श्रधिकांश समय ब्यतीत हो गया। इन्द्रियाँ

शिथिल हों गई; परन्तु तव तक उनकी कोई भी सन्तान न थी और न उनकी सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी ही था।

सन्ति के अभाव से दोनों बहुत चिन्तित रहा करते थे। सुदेहा को पुत्र न होने से जो दुःख था, उसका अनुमान निःसन्तान माताएँ ही कर सकती हैं। सुजान सुधर्मा अपनी पत्नी को शास्त्र-पुराणों की अनेक वार्ते सुना कर बहुत समभाते थे और कहते थे, कि "हे प्रिये! संसार में कौन किसका पिता, कौन किसका माता और कौन किसका पुत्र है ? यह संसार स्वार्थ के लिये सब कुछ करता और पाप-पुग्य का भागी बनता है। भला, पुत्र उत्पन्न होकर ही क्या करेगा ?" परन्तु सती सुदेहा को इन बातों से सन्तोष न होता। वह सदा कुछ उपाय करने की ही प्रार्थना किया करती थी और कहा करती कि "यदि आप सन्तान का कुछ उपाय नहीं करेगे तो मैं अपना शरीर त्याग दूंगी।"

एक दिन सुदेहा ने अपने पित से कहा:— "प्राणनाथ ! मेरे गर्भ से तो सन्तान होने को अब कोई सम्भावना है ही नहीं । अतः आप दूसरा विवाह कर लें तो वड़ा अच्छा हो और हम लोगों की वृद्धावस्था भी सुखपूर्वक कर जाय। दूसरी भार्या में अवश्य ही पुत्र होगा—यह मेरा आन्तरिक विश्वास है। सुधर्मा ने कहा— "अभी तो तुमको कहने में अच्छा मालुम लगता है; परन्तु जब सपत्नी (सवित) आ जायगी, तब कष्ट पावोगी। और घर में अशान्ति का राज्य हो जायगा। तुम दोनों आपस में कलह करोगी और मेरे भजन में वाधा होगी।"

सुदेहा ने पित की एक न मानी और धुश्मा नाम को अपनी एक बहिन को बुलाकर उसके साथ अपने पित का द्वितीय विवाह करा ही दिया! अब धुश्मा अपने पित देव की तथा बाहन की भी समान सेवा करने लगी। सुदेहा को वह अपनी माता से बढ़ कर मानती और सदा उसी की आज्ञा में रहती थी। उसका नियम था कि वह प्रति दिन १०१ पार्थिव शिवलिंग बनाकर विधिवत् उनकी पूजा करती और अन्त में उन्हें एक तालाब में छोड़ देती थी।

इस प्रकार सदाशिव भगवान की आराधना करते २ बहुत काल बीत गये। एक दिन भगवान शंकर ने प्रसन्न होकर उसको सर्वगुणसम्पन्न तेजस्वी एक पुत्र होने का वरदान दिया। शिवजी के वरप्रसाद से धुश्मा के गर्भ से भाग्यवानों के सभी लक्षणों से युक्त एक सुन्दर वालक उत्पन्न हुआ। उस अद्भुत बालक को देखकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए और अनेक प्रकार के आनन्द मनाने लगे। सुरेहा पहिले तो बालक को देख बहुत प्रसन्त हुई; परन्तु कुछ समय बीतने पर उसके मन में ईच्या (डाह) का अंकुर पैदा हुआ और वह अपनी सपत्नी तथा उसके पुत्र को देख-देखकर जलने लगी। ज्यों २ वह लड़का बढ़ता जाता था, त्यों २ सुदेहा का हृद्य दुःखित होता जाता था। जब समय आने पर उसका विवाह हुआ और उसकी स्त्री घर में आई, तब तो वह जल-सुन कर खाक हो गई, घर के सब लोग उसका आदर करते तथा उसकी पूरी सेवा करते थे। पर सुदेहा के हृद्य की अग्नि शान्त नहीं होती थी। अन्त में उसने यही निश्चय किया कि 'मेरे हृद्य की शान्ति खुश्मा के आँसुओं से ही हो सकती है।

इसी निश्चय के अनुसार सुदेहा ने रात के समय, अपनी स्त्री की शब्या पर सोये हुए सपत्नी के पुत्र को छूरा से टुकड़े २ कर डाला। उन टुकड़ों को रात ही रात किसी समीपवर्ती तालाव में फेंककर वह स्वयं सुपत्राप अपनी कोठरी में जाकर सो गई। इधर सबेरा होते ही सब लोग अपने २ नित्य कृत्य में लग गये। सुधर्मा सन्ध्या पूजा करने लगे, धुश्मा शिवार्चन करने लगी और सुदेहा भी उस दिन गृहकार्य में तत्पर हो काम करने लगी। उधर जब बहु की नींद खुलो तो उसने अपने पित को न पाया; प्रत्युत शब्या को रक्त से एक दम रंगा हुआ पाया। वह वेहोश हो गई, उसके हृद्य स्ख गये। किसी प्रकार होश में आकर विलाप करती हुई उस नव-चधू ने घर के लोगों को यह कु-सन्देश सुनाया। सुदेहा ने जब यह समाचार सुना तो छाती पीट २ कर रोने लगी। परन्तु सुधर्मा और उसकी धुश्मा दोनों अपने नियम का परित्याग न कर, देवार्चन समाप्त करने में लगे रहे और अधिक विचलित नहीं हुए। उन लोगों का यह पूर्ण विश्वास था कि जिस परमात्मा ने ऐसा सुन्दर पुत्र दिया है, वही उसकी रज्ञा भी करेगा। वे सोचते थे कि 'शिव-भक्तों का जिकाल में कभी कोई

मध्याह होने पर घुश्मा अपने प्रतिदिन के नियमानुसार पार्थिव लिङ्गों का प्रवाह करने के लिये उसी तालाव में गई और वहाँ से ज्यों ही घर को लौटने लगी, त्योंही उसका पुत्र उस तालाव से निकल कर पुकारने लगा— "मातः! में मर कर फिर जी उठा हूं, मुभे अपने श्रीचरणों को स्पर्श कर लेने दो"—यह सुनते ही उसकी माता विश्मित-सी खड़ी हो गई और वह आकर चरणों पर गिर पड़ा।

धुश्मा ने भगवान् की माया की मन ही मन खुव प्रशंसा की, श्रौर जिस

प्रकार पहिले मरण सुन कर दुःखित न हुई थी, उसी प्रकार जीवन सुनकर अव आनिन्द्त भी न हुई । इस अपूर्व भीरता एवं समता को देखकर आग्रतोष भगवान शंकर बहुत प्रसन्न हुए और दर्शन देकर कहने लगे—"धुश्मे ! मैं तुमसे परम प्रसन्न हूं, तुम मुक्तसे वर भाँगो । तुम्हारी सपत्नी ने तुम्हारे पुत्र को काट डाला था, मैं इसको अपने त्रिश्चल से स्वयं माह्नँगा।"

धुश्मा ने हाथ जोड़कर कहाः—"प्रभो ! यदि आप मुक्त पर प्रसन्न हैं तो हापया मेरी वहिन की रक्षा करें । उपकारी के साथ अपकार करने वाला अवश्य द्गड़ का भागी होता है, और उसे प्राण्ड्य देना चाहिये भी; परन्तु आपके दर्शन से वह अय पापरिहत हो गई । इसिलये वह प्राण्ड्यान देने के योग्य हो गई । आपके दर्शन का प्रभाव भी भक्तों पर तभी पड़ेगा । नहीं तो "दर्शन से अघ जाँय"—यह कथन व्यर्थ होगा । हे भगवन् ! उसकी प्राण्ट्या से सुक्ते वड़ा लाभ होगा । क्योंकि शास्त्र-पुराणों में मैंने सुना है कि जो व्यक्ति अपकार करने वाले के प्रति उपकार करता है, उसके मुख-दर्शन से सब पाप दूर हो जाते हैं। इसिलये द्यानिधान ! मेरी ऊपर द्या कीजिये और इस नीति पवं धर्म-संगत कार्यों से मुक्ते लाभ उठाने दीजिये।"—में यही चाहता हूं। शिवजी ने फिर कहा—" में तुम्हारे इस पवित्र भाव से अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुभे इसके अतिरिक्त और जो वर माँगना हो, माँग लो, मैं देने को तैयार हूं ग

धुश्माने निवेदन किया—"हे महेश्वर! श्राप कृपा करके इस स्थान में निवास की जिये, जिससे संसार का कल्याण हो"। महादेवजी ने प्रसन्न होकर "प्वमस्तु" कहा, तभी से भगवान शंकर जी सात्तात् वहां रहने लगे श्रोर "धुश्मेश्वर" के नाम से प्रसिद्ध हुए। उस तालाव का नाम "शिवालय" पड़ा। भगवान ने यह भी कहा कि श्राज से तुम्हारे वंश का विस्तार होगा। उसमें उत्पन्न होने वाले मनुष्य श्राग्निहोत्र करने वाले परम विद्वान हांगे, धन-धान्य की उन्हें कभी कमी न होगी श्रोर वे दीर्घायु होकर शिवलोक (मुक्तिधाम) को जाया करेंगे।"

पेसा कहकर शिवजी ने उसी समय वहीं शिवलिङ्ग का रूप धारण किया श्रीर श्रपने उस दिव्य रूप को देखते २ श्रन्तध्यान कर लिया। उसी दिन से सुधर्मा के कुटुम्ब का पारस्परिक द्वेषभाव दूर हो गया श्रीर सब लोग प्रेम-पूर्वक परमानन्द का उपभोग करने लगे।

धुश्मेश्वर महादेव के दर्शन करने से सब पाप दूर हो जाते हैं और सुख की वृद्धि उसी प्रकार होती है जिस प्रकार ग्रुक्छपच में चन्द्रमा की वृद्धि होती है। शिवपुराण में इसी प्रकार लिखा है:— ईहरों चैव लिझें च हाष्ट्र पापै: प्रमुच्यते । सुखं संवर्धते पुंसां शुक्कपक्षे यथा शशी ॥१॥ —( शिव पु॰ ज्ञान॰ खं॰ ५२ अ० म्२)

# ऋषियोंकी अपूर्व शिवभक्ति

एक वार देवदाठ वन के निवासी मुनियों ने ऐसा विचार किया कि देव-देव श्री महादेवजी को जानने और उनको प्रत्यक्त करने से बढ़कर दूसरा कहयाण का साधन कोई नहीं है। देवता, ऋषि, पितर-सब के वे ही प्रभु हैं। सृष्टि के आरम्म में वे ही अपने प्रजापित कप से संसार की रचना करते हैं और युग के अन्त में अपने काल कप से सब का संहार करते हैं। योगी लोग इन्हों छद्र का, पर्चक्र में अर्थात् मिण्पूरकचक्र में सदी ध्यान करते रहते हैं। कोधरिहत शान्त और जितेन्द्रिय ब्राह्मण् लोग भी इन्हीं के लिङ्ग की आराधना करते हैं। इनके साज्ञात् दर्शन के लिये शास्त्र के अनुसार इनकी उपासना करती चाहिये। शास्त्र के अनुसार सब लज्जणों से युक्त अंगुष्ठ के समान शिवलिंग हो और इससे दुगुनी जलहरी (अरधा) हो। किर इस शिवलिंग के समीप कलशस्थापक करके इस लिंग में विधिपूर्वक शिवजी की पूजा करनी चाहिये। अन्त में "के सची जातादि" मंत्रों से उस कलश को अभिमंत्रित करके उसके जल से अभिषेक करना चाहिये।

इस प्रकार विचार, सब मिलकर महादेवजी की आराधना करने लगे। उन्हें तप करते हुए एक वर्ष पूरा होगया। अन्त में परम दयालु शंकरजी हिमालय के उस देवदार बन में प्रत्यत्त हुए। मुनिलोग अपनी २ स्त्री और पुत्रों के साथ परमानन्दित हो, स्वच्छ जल अनेक भांति के फूलों की मालाओं, धूप, चन्दन और नैवेद्यों से आशुतोष शिवजी की पूजा करते हुए, भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे:—

"हे भगवन् ! श्रापके चरित्र विचित्र पवं श्रगम्य हैं। उनको ब्रह्मादि देवता भी नहीं जान संकते। हे देव ! महात्मा पुरुष श्रापकी स्तुति इस भांति करते हैं: "ॐ नमो भवाय भव्याय भावनायोद्भवाय च। श्रनन्तवलवीर्याय भूतानास्पतये नमः ॥ १ ॥ संहर्त्रे चाप्यसंगाय श्राययाय व्ययाय च । गंगासाललघाराय श्राधाराय गुणात्मने ॥ २ ॥ व्यय्यकाय त्रिनेत्राय त्रिशुलवरधारिणे । कन्दर्पाय हुताशाय नमोऽस्तु परमात्मने ॥ ३ ॥ शंकराय वृषाङ्काय गणानास्पतये नमः । द्रगुडहस्ताय कालाय पाशहस्ताय वै नमः ॥ ४ ॥ ॥

इस भाँति परम भक्ति से स्तुति करते हुए सव महास्माओं ने भगवान् शंकर को प्रसन्न किया। उनकी स्तुति सुनकर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोलेः—

"हे मुनीश्वरो! संसार में जितने स्त्रीलिंग है, सब मेरी देह से उत्पन्न हुई प्रकृति के रूप हैं। जितने पुर्लिंग हैं, सब पुरुष रूप में मेरे ही स्वरूप हैं। इसलिये जो किसी की निन्दा न करते हुए, भस्म धारण कर-जितेन्द्रिय होकर-श्रपने पापों को दग्ध करके मेरे ध्यान में तत्पर हो श्राराधना करते हैं, उनको मेरे लोक की प्राप्ति होती है। सब भय-बाधाओं को दूर करने वाले महादेवजी के इस प्रकार के वचन सुनकर, उनके श्रादेशानुसार लोभ-मोह-श्रादि को छोड़कर, उन्हीं के श्ररणागत हो, मुनिलोग फिर इस प्रकार स्तृति करने लगे:--

"सुरचितविचित्रकुण्डलाय सुरचितमाल्यविभूषणाय तुभ्यम्। मृगपतिवरचर्भवाससे पृथुयशसे च नमोऽस्तु शंकराय॥"

इस प्रकार मुनियोंकी स्तुति सुन, महादेवजी ने प्रसन्न होकर कहा—"मैं
तुम लोगों की तपस्या से प्रसन्न हूं। वर मांगो।" इसपर भृगु, श्रङ्गिरा, वसिष्ठ,
विश्वामित्र, गौतम, श्रनि, सुकेश, पुलस्य, पुलह, कतु, मरीचि, कश्यप, कएव,
सम्वन्त श्रादि मुनि परम श्रद्धा-भिक्त से महादेवजी को प्रणाम करके वोले"हे महाराज! हमारी एकमात्र श्रमिलाषा यही है कि श्रापके चरणारविन्द में
हमलोगों की श्रनपायिनी भिक्त हो, वस यही वर माँगते हैं।

महादेवजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वर दिया कि "मेरी इस आराधना के फल से तुम लोगों की मेरे प्रति अमिट भक्ति होगी और उस भक्ति के प्रभाव से संसार में तुम लोगों का सबसे ऊंचा स्थान रहेगा। सब लोग देवों से अधिक तुम लोगों का सम्मान करेंगे। इस लोक में उच्च पद पाकर अन्त में सब ऋषि शिवलोक को जावोगे।"

इतना वर देकर भगवान् शंकर अपने लोक को चले गये और ऋषि लोग

अपनी तपस्या की समाप्ति कर, अपने अपने आश्रम को पधारे।

भूतं भव्यं भिवष्यं व स्थावरं जंगमं च यत्।

तव देहात्समृत्पन्नं देव! सर्वीमिदं जगत्॥ १॥

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाद्यत्विञ्चित्कुरुते नरः।

तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया॥ २॥

#### प्रसिद्ध ऋषि सर्वणि

प्राचीन काल में व्याघ्रपाद के पुत्र शिवभक्त महात्मा 'उपमन्यु' थे। उन्हीं के दिव्य अ।श्रम में — जो बाह्मी शोभा से सुशोभित, सुर-गन्धर्व-सुसेवित, विविध पुष्प-गुल्म-लप्तादिकों से श्राच्छादित, उत्तमोत्तम फलों से युक्त, मनोहर पशु पक्षियों से भरे हुए, विहंगों के कलरवों से व्याप्त, कहीं कदलीवन-कहीं वदरीवन श्रीर कहीं रसालवन में रसोन्मत्त मधुपों के गुआर से ध्वनित, स्थान २ पर भस्मक्यों से ढकी हुई अग्नि से विभूषित अनेक कुएडों वाले-जहां आपस में सहज शत्रुता का त्याग कर गो ज्याघ्र एक साथ चर रहे हैं, जहाँ त्रिविध समीर प्राणामात्र को सुखद है, जहाँ भरनों के कल कल निनाद ऋषियों के मन को मुग्ध कर रहे हैं, ऊहाँ हिरणगण सुख से हरी २ घास चर हैं,जहाँ दैहिक-, दैविक-ग्राधिभौतिक त्रितापों का लेशमात्र भी प्रसार नहीं, जहाँ पवित्र सिळला त्रिपथगामिनी भागीरथी की निर्मल धारा वह रही है और जिसके मनोहर तट पर ऋषि लोग नित्यकर्मा करते हुए भगवान् शंकर के ध्यान में मग्न रहते हैं —ऐसे विमल-शान्त तपोवन में-सर्वणि मुनि ने जाकर ६०० (छः सौ) वर्षो तक् भ्वयम्भु महादेव के श्रीचरणों का ध्यान किया । तव करुणावरुणालय श्राशुतोष भगवान् शिवजी ने प्रत्यत्त होकर मुनिको वरदान दिया कि "हे मुने ! मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तुम भूलोक में प्रसिद्ध प्रन्थकत्ता और अजर-श्रमर होगा। । तव से सर्वणि ऋषि 'ग्रमर' हो गये। क्योंकिः—

ंतमाह भगवान् रुद्रः साक्षानुष्टोऽस्मि तेऽनघ । ग्रन्थकृह्णोकविख्यातो भवितास्यजराऽमरा ॥" (म० सा० श्रनु० पर्व १४ श्र०)

#### महामुनि व्यास जी

पुराण इतिहास के पढ़ने वाले सभी मनुष्य कविवर व्यास जी से अञ्झी तरह परिचित हैं। इनकी महाभारत-रचना अनुपम है। ये साचात विष्णु भगवान् के अवतार कहे जाते हैं इनके अनेक नाम भी हैं। ये द्वीप में उत्पन्न होने के कारण "द्वैपायन तथा वेद शाखाओं के विभाग करने एवं पुराण रचने के कारण "व्यास" (१)कहलाते हैं।

एक वार धर्मार्थ-काम मोच देने वाले तीर्थराज प्रयाग, नैमिषाराय, कुरुक्रेत्र, हरद्वार, अवन्तिका, अयोध्या, मथुरा, अमरावती, सरस्वती, सिन्धु, गंगासागर-इत्यादि तीर्थों में अमण करते हुए श्रीव्यासजी उस वाराणसी पुरी में
पहुँचे, जहाँ जगत्पिता अगवान विश्वेश्वरनाथ तथा जगन्माता भगवती श्री अझपूर्णा देवी साचात् विराजती हैं। यहाँ आकर उन्होंने समस्त देवी-देवताओं के
दर्शन किये और शास्त्रविधि से समस्त वापी-कूप-सरोवर-कुगडों में यथाविधि
स्नान-दान करते हुए, मणिकणिका घाट पर विश्राम किया। तदनन्तर पुनः विनायकादि समस्त देवगणों को सन्तुष्ट करके, आलस्य रहित हो, समस्त पितृ-तीर्थों
में श्राद्ध-तर्पण किया। इस प्रकार काशी का पंचकोश करके पुण्यातमा श्री व्यास
जी ने "व्यासेश्वर" नामक ज्योतिर्लिङ की स्थापना की। जिनके दर्शन-पूजन से
मनुष्य सव विद्याओं में बृहस्पति(२) के समान हो जाते हैं।

एक वार व्यासमुनि शिष्यों को पढ़ाकर विश्राम कर रहे थे। इसी बीच उनके मन में प्रन्थ रचने की इच्छा हठात् उत्पन्न हो गई। वे सोचने लगे कि किस देवी-देवता के आराधन से मुक्तमें प्रंथ रचने की शक्ति होगी। सोचते २ सायं-सन्ध्या का समय आ पहुँचा। विधिवत् सन्ध्योपासन के पश्चात् समाधिस्थ मुनिवर व्यास जी अपने इष्ट-देव शंकर के ध्यान में लग गये। कुछ ही दिनों में एक जर्जर-काय जटाधारी तपस्वी उनके सामने आये। व्यास जी ने नेत्र खोलकर देखा और सामने आये हुए कायबृद्ध ज्ञानतरुण महात्मा से पूछा:—

<sup>(</sup>१) द्वीपे जातो यतो बालस्तेन द्वैपायनोऽभवत् । वेदशाखाविभजनाद्वेद्व्यासः प्रकीर्त्तितः ॥ [शि० पु० ४४ अ० ४४ श्लो० ]

<sup>(</sup>२) स्थापयामास पुरायात्मा लिंगं व्यासेश्वराभिधम् । यदर्शनाद्भवेद्विप्रा नरो विद्यासु वाक्पतिः ॥ [शि० पु० ४४ अ० ५७ ]

"महात्मन्! किस शिवलिंग के आराधन से हमारी मनोकामना सिद्ध होगी और संसार में प्रंथ रचना की शिक का प्रादुर्भाव होगा? क्योंकि ऋषियों द्वारा मेंने शिवजी के अनेक नाम सुने हैं।" जिनमें (१) आंकारनाथ, (२) कृत्तिवासे ख़्यर, (३) केदारेश्वर (४) कामेश (५) चन्द्रेश (६) कलशेश्वर (७) जाम्युक्यर, (८) जैगीवेश्वर (६) दशाश्वमेधेश्वर (१०) हुमचएडकेश (११) गरुडेश (१२) गोकर्णेश (१३) गएश्वर (१४) घमेंश (१५) प्रसन्नवदनेश (१६) तारकेश्वर (१७) मरुतेश (१८) निवासेश (२०) पत्रीश (२१) पशुपति (२२) हारकेश्वर, (२३) तिलभाएडेश (२४) भारभूतेश्वर (२१) महालदमीश्वर (२६) मुक्तिनाथ (२७) अमृतेश (२८) भुवनेश्वर (२६) विश्वेश्वर (३०) सिद्धेश्वर (३१) आजेश्वर (३२) पार्वतीश्वर (३३) हिरएय-गर्भेश (३४) रामेश्वर (३५) स्थानेश्वर (२६) रत्नेश (३७) कोटिकट्रेश्वर (३८) कमलेश्वर (३६) वीरेश्वर (४०) मध्यमेश्वर—इत्यादि(१) अनेक शिवलिक्ष विख्यात हैं।

उस महातमा ने कहा कि यों तो सभी शिवलिंग समान हैं, और सब की आराधना से आशुतोष भगवान शीव्र प्रसन्न होते हैं; परन्तु आप "मध्यमेश्वर" (२) महादेव का ध्यान-पूजन करें, तो मेरी समक्ष में सर्वा त्तम होगा। काशी खरड़ में मध्यमेश्वर लिंग का माहात्म्य अवर्णनीय हैं, जिसके दर्शन करने के लिये समस्त देवता प्रतिपर्व में वहाँ आते हैं, जिनकी सेवा से अनेक देवी-देवता-पन्न-गन्धर्व सिद्ध हो गये हैं। गन्धर्वराज 'तम्बुक्त और देविं 'नारद' इन्हीं महादेव की आराधना से संगीत शास्त्र में प्रवीण हुए। इन्हीं की आराधना से ब्रह्मा सृष्टि करते, विष्णु भगवान पालन करते और शंकर जी प्रलय काल में संसार का संहार करते हैं। इन्हीं की कृपा से शेषनाग समस्त पृथ्वी को अपने ऊपर लिये हुए हैं। कहाँ तक कहा जाय—सूर्य्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु आदि सभी चराचर देव-दानव, मनुष्य अपने २ अधिकार पर स्थिर रहते हुए सिद्धि को प्राप्त करते रहते हैं।

<sup>(</sup>१) किं वा हिरएयगर्भेशं किं वा श्रीमध्यमेश्वरम् । इत्यादि कोटिलिंगानां मध्येऽहं किमुपाश्रये ॥ [शि० पु० ४४० अ०७३]

<sup>(</sup>२) अतः सेव्यो महादेवो मध्यमेश्वरसंज्ञकः। अस्याऽराधनतो विप्रा बहवः सिद्धिमागताः॥[शि० पु० ४४ अ० ७९ श्लो०]

इस प्रकार उस महात्मा के वचन सुनकर मुनिवर व्यासजी ध्यानमग्न हो गये श्रौर फिर नेत्र खोलने पर उस महात्मा को वहाँ से श्रन्तध्यीन होते जानकर उनके हृदय में शिवलिंग की श्राराधना का दढ़ निश्चय हो गया।

नित्य नियम पूर्वक फलाहार करते हुए श्री ग्यास जीमध्यमेश्वर लिंग की श्राराधना करने लगे। कुछ दिनों वाद, एक दिन वे पूजनान्तर भगवान् की स्तुति कर रहे थे, कि जगित्वता परमेश्वर शंकर जी वाल योगी के वेष में प्रत्यक्ष हुए। श्रीव्यास जी ने इस प्रकार उनकी स्तुति की। यथा:—

#### अभिलाषाष्ट्रकस्

वेदव्यास उवाच-देववेव महाभाग शर्णागतवत्सल ! वाङ्मनःकर्मदुष्पाप योगिनामप्यगोचर ॥ १ ॥ महिमानं न ते वेदा विदामासुरुमापते ! त्वमेव जगतः कत्ती धत्ती हत्ती तथैव च ॥ २ ॥ त्वमाद्यः सर्वदेवानां सच्चिदानन्द ईश्वरः । नामगोत्रे न वा ते स्तः सर्वज्ञोऽसि सदाशिव ॥ ३ ॥ त्वमेव परमं ब्रह्म मायापाशनिवर्त्तकः। ग्रणत्रयैने लिप्तस्त्वं पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ४ ॥ न ते जन्म न वा शीलं न देशो न कुलं च ते। इत्थंभूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः काममावहेः ॥ ५ ॥ न ब्रह्मा न च लच्मीशो न च सेन्द्रा दिवौकसः। न योगीन्द्रा विदस्तत्वं यस्य तं त्वासुपास्महे ॥ ६ ॥ त्वत्तः सर्वे त्वं हि सर्वे गौरीशस्त्वं पुरान्तकः। त्वं बालस्त्वं युवा द्रद्धस्तं त्वां हृदि युनज्म्यहम् ॥ ७ ॥ नमस्तस्मै महेशाय भक्तध्येयाय शाम्भवे । पुरारापुरुषायाद्धा शंकराय परात्मने ।। 🗷 ।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य व्यासस्यामलचेतसः ।

शुचिसमृत्वा महादेवो बालक्ष्पधरोऽत्रवीत् ॥ ६ ॥

बाल शिव उवाच—

त्वया ब्रह्मविदां श्रेष्ठ योऽभिलाषो कृतो यदि ।

श्रचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयः ॥ १० ॥

श्रमिलाषाष्टकं पुर्ण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम् ।

वर्षे त्रिकालं पठनात्कामदं शम्भुसद्मिनि ॥ ११ ॥

शातक्त्याय सुस्नातो लिङ्गमभ्यच्ये शाङ्करम् ।

वर्षे पठिनिदं स्तोत्रं मूर्लोऽपि स्याद्बृहस्पितः ॥ १२ ॥

इति श्रीशिवपुराणान्तर्गतं व्यासकृतं अभिलाषाष्टकं स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

महामुनि श्री व्यास जी के स्तुति करने पर भगवान् शंकर प्रसन्न हुए श्रीर मनोवांछित वरदान दे अन्तर्ध्यान हो गये। तब से मध्यमेश्वर महादेव की ख्याति श्रीर भी बढ़ गई। जो मनुष्य उनकी पूजा करता एवं नित्य दर्शन करता है, वह निश्चयही यशस्त्री किव हो जाता है और श्री व्यास जी के समान वह भी पुराण इतिहास का प्रसिद्ध लेखक हो जाता है। उन्हों की कृपा से व्यास जी अमर हो गये।

एवं लब्धवरो न्यासो महशान्मध्यमेश्वरात् । अष्टादशपुराणानि प्रणिनाय स्वलीलया ॥ (शि॰ पु॰ ४४ अ० ११६ श्लोक)

# रुद्रावतार महर्षि दुर्वासा ।

महर्षि दुर्वासा श्रित्रमुनि के पुत्र श्रीर शिवजी के अंश से उत्पन्न थे। ये फलों का—विशेष कर दूर्वा का श्रसन (श्राहार) करते थे, इसी लिये इनका नाम "दुर्वासा" पड़ा है। इनका क्रोध भी सुखद है, इसके श्रनेक प्रमाण पुराणों में मिलते हैं। श्रस्त—

एक समय महर्षि दुर्वासाजी भूमएडल में भ्रमण करते हुए पितृलोक में पहुँचे। वे सर्वाङ्ग में भस्म रमाये एवं रुद्राक्ष धारण किये हुए थे। हृद्य में उमा-पार्वती का ध्यान करते हुए—''जै पार्वती हर' का उच्चारण करते हुए कमण्डलु तथा त्रिशूल लिये हुए, दुर्वासा मुनि ने अपने पितरों के दर्शन किये और उन्हें दण्डवत्-प्रणाम करके कुछ बातें कर ही रहे थे, कि इसी बीच उनके कानों में करुण-क्रन्दन सुनाई पड़ा। वे पापियों के हा-हाकार मय भीषण रुदन को सुनकर कुम्भीपाक, रौरव नरक आदि स्थानों को देखने के लिये आगे बढ़े। वहाँ पहुँच कर, मुनि ने वहाँ के अधिकारी से पूछा—''पितृनाथ! ये लोग इतनी यम-यातना क्यों सह रहे हैं ?' उन्होंने कहा—मुने! यह कुम्भीपाक नामक नरक है। यहाँ वे ही लोग आकर कष्ट भोगते हैं—जो शिच, विष्णु, देवी, सूर्यं, गणेश के निन्दक हैं, जो माता-पिता-गुरु जनों से छल कपट करते हुए उनसे द्रोह रखते हैं तथा जो वेद-पुरोण के विनिन्दक हैं।

यह सुन, दुर्वासा ऋषि दुःखित हुए ग्रौर कौतुकवश वहाँ देखने के लिये गये। कुण्ड के समीप जाकर सिर नीचे करके ज्यों ही देखने लगे त्योंही उनके मस्तक से कुछ भस्म के कण कुण्ड में गिर पड़े। कण के गिरते ही वह कुण्ड दिव्य कुएड के समान अथवा स्वर्ग के समान चमकने लगा। वहाँ के पापीछ जीव एकाएक प्रसन्न हो उठे और सब दुःखों से मुक्त होकर गद्गदस्वर से मधुर भाषण करने लंगे। आपस में देवताओं की भाँति प्रेमालाप करने लगे। मानों स्वप्न के दु: बों को जागृति अवस्था में होकर भूल गये हों। उस समय आकाश से पुष्प वृष्टि होने लगी, त्रिविध समीर चलने लगे। वसन्त ऋतु के समान वह समय यम-दूतों को भी विस्मय में डाल दिया। चिकत होकर यमदूतों ने धर्मराज के निकट जाकर एकाएक इस परिवर्तन की सूचना दी और कहा-'महामाग ! वड़े श्राश्चर्य की बात है कि सब पापियों को इस समय अपार हर्ष हुआ है, किसी को किसी प्रकार की यम-यातना रह ही न गई। हे विभो ! यह क्या कारण ? यह सुनते ही धर्म-राज स्वयं गये श्रीर वैसाही देखकर चिकत हो गये। सब देवताश्रों को बुलाकर इसका कारण पूछा-परन्तु किसी को इसका मूल कारण नहीं मालुम हो सका। जब किसी प्रकार पता न चला, तब ब्रह्मा और विष्णु की सहायता से धर्मराज स्वयम्भु भगवान् शंकर के निकट गये। उस समय करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर पार्वती के साथ विराजमान, शिवजी को देखकर वे लोग स्तुति करके बोले-

"हे देवदेव ! कुम्मीपाक का कुण्ड पकापक स्वर्ग कुण्ड के समान हो गया इसका क्या कारण है ? किसी को मालूम नहीं होता। श्रतः श्रापकी सेवा में हम

क्ष पार्वत्या सिहतं देवं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् । [ दे० भा० १२ स्कं० १५ अ० ]

लोगों की यही जिज्ञासा है।" सर्वान्तर्यामी भगवान् ने गम्भीर स्वर से हँसते हुए कहा—"देवगण! इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है, यह केवल हमारी विभूति (भस्म) का माहात्म्य है। जिस समय हमारा भक्त दुर्वासा कुम्भीपाक नरक को देखने के लिये गया था, उसी समय उसके ललाट से वायुवश कुछ भस्म के क्ण उस कुएड में गिर पड़े। इसी कारण से वह स्वर्ग कुएड वन गया है। और अव वह स्वर्गीय "पितृतीर्थ" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।"

भगवान शंकर की बात सुनकर धर्मराज को तृप्ति हुई और वहाँ से शीव ही अपनी पुरी में आकर यमदूतों को सावधान कर दिया कि अब वह कुएड "पितृतीर्थ" हुआ। कुम्भीपाक के लिये दूसरा कुण्ड निर्माण करना पड़ा।

उस समय देवताओं ने उस कुएड के समीप शिवलिंग और देवों की स्थापना की और वहां के पापियों को मुक्त कर दिया। तब से पितृलोक में उस मूर्ति के दर्शन-पूजन करके पितृलोग शिवधाम (मोक्ष) को प्राप्त करने लगे। देवी भागवत में लिखा भी हैं:—

'तुनुजातिमदं सर्वे भस्मनो महिमा त्वयम् । इतः परं तु तत्तीर्थे पितृलोकनिवसिनाम् ॥

# शिवभक्त एक ब्राह्मण और उनके चार पुत्र

अवन्ती नाम की एक नगरी है। जो शिव जी को बहुत प्रिय है। यह स्थान किस प्रकार शिव के लिये परम प्रिय हो गया और पतितों को सद्गति देने वाले परम पवित्र तीर्थ में परिएंत हो गया, उसकी कथा यों है:—

यहाँ एक परम सदाचारी ब्राह्मण रहते थे। वे सदा श्राग्निहोत्र में तरण होकर शिव जी की श्रनन्य उपासना में लीन रहते थे। वे नित्य शिव जी की पार्थिव पूजा किया करते थे श्रीर सदा वेदों को पढ़ने-पढ़ाने में अपना समय वितार थे। ये ज्ञान-परायण थे। इनके चार पुत्र थे-जो सदा इनकी आज्ञा का पालन करते में तत्पर रहते थे श्रीर अपने पिता के श्रत्यन्त श्रत्यायी थे। श्रपने पिता के श्रत्या सदा शिव जी की पूजा, वेदाध्ययन श्रीर सत्कर्मों में तत्पर रहते थे। इन लोगों के प्रमाव से उस नगरी की खुल श्रीर शान्ति उसी प्रकार दिन २ बढ़ती जाती थी, जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कला दिन २ बढ़ती जाती है। उनके पुष्प के प्रताप से संपूर्ण पृथ्वी सुल श्रीर शान्ति से परिपूर्ण हो रही थी। इसी नगरी

के समीप "रत्नभाल" नाम का एक पहाड़ था। इस पहाड़ पर महा पापी श्रौर महा बलवान् एक राक्षसीं का राजा रहताथा। ब्रह्माजी के वरदान के बल से वह सम्पूर्ण संसार को तुच्छ समकता था और देवताओं को पराजित करके वैदिक धर्म को समूल नष्ट करने पर तुला हुआ था। उस अवन्तो नगरी और वहाँ के धर्मपरायण उन ब्राह्मणों के पुर्य-प्रताप के विषय में उसे मालूम हुआ। वह भला इसे कैसे सह सकता था ? दैत्यों की सेना लेकर वह उस नगरी पर चढ़ श्राया, श्रीर हुक्म दिया कि ये ब्राह्मण श्रीर यहाँ रहने वाले उनके श्रनुयायी शिव की पूजा तथा वैदिक धर्म को छोड़कर मेरी अधीनता क्वूल करें, नहीं तोमें इन लोगों का सत्यानाश कर डालूंगा। किन्तु सर्वशिकमान् शिव में श्रद्धा श्रौर विश्वास रखने वाले ये ब्राह्मण कब अपने पथ से विचलित होने वाले थे ! इन्हें कुछ भी भय न हुआ। इनको धैर्य के साथ शिव जी की आराधना तथा अपने धर्म पालन करने में पहले जैसाही तत्पर देख, दैत्यों ने सम्पूर्ण नगरी को घेर लिया और लगे पक-एक कर लोगों को सताने, वध वध करने। सम्पूर्ण नगर में हा-हाकार मच गया। सब भागकर उन ब्राह्मणों की शरण में आये और बोले कि हे विप्रो ! अब क्या करना चाहिये। हम लोगों का सत्यानाश हो रहा है। अब वचने का कोई उपाय नहीं सूफता।" सदा शिव में अटल विश्वास रखने वाले उस वेदिपय ब्राह्मण के लड़कों ने कहा-सुनो, हम लोगों को इन दुष्टों का कुछ भी भय नहीं है। सर्च-शक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक शिव जी के आश्रितों का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। हमस्वामी शिव की शरण लें। इनको छोड़कर कोई दूसरा हमारी रक्षा करने वाला नहीं है। इस प्रकार सब को धैर्य देकर श्रीर स्वयं शान्त होकर, वे पुनः पार्थिव-शिव की पूर्जा करते हुए ध्यानमग्न हो गये। इतने में दैत्यगण वहाँ स्रा पहुँचे स्रोर ब्राह्मणों को शिवध्यान में मग्न देख, उनको मार डालने की धमकी देने लगे। ज्योहीं वे उनको मारने के लिये उद्यत हुए, त्योही पाधिव शिवलिंग भयंकर शब्द करते हुए फट गया श्रीर उस गढ़े से तुरन्त भक्त-भयहारी, सज्जनों के रक्षक, दुष्टों को बध करने वाले शिव जी विराट् महाकाल के रूप में वहाँ प्रकट हुए श्रीर कहने लगे :-

हे

K

ही

ते

ने

Ħ

ने

ñ,

य

री

"पे दुष्ट दैत्यो ! मैं तुम लोगों का नाश करने के लिये महाकाल कप से प्रकट हुआ हूँ । अब तुम इन ब्राह्मणों के समीप से दूर भागो ।" पेसा कहकर महाकाल शिव ने सेना सहित उन दुष्टों को उसी क्षण में हुंकारमात्र से भस्म कर दिया । जिस प्रकार स्योदिय हाते ही अन्धकार विलोन हो जाता है, उसी प्रकार शिव के प्रकट होते ही उस दुष्ट सेना का विनाश हो गया। स्वर्ग से फूलों की वर्ष हुई।
ब्राह्मण ने अअलियद्ध होकर संसार के कल्याणंकारी शंकर भगवान् को अत्यन्त
भक्ति से प्रणाम करके स्तुति करने लगे। महाकाल महेश्वर ने ब्राह्मणों के धैर्य
पर प्रसन्न होकर उनको वर मांगने की आज्ञा दी। सब ब्राह्मण हाथ जोड़े, मस्तक
भुकाये परम भक्ति से प्रणाम करते हुए बोले :—

"हे महाकाल ! हे देव ! दुष्टों को दंड देनेवाले, प्रभु शिव जी ! संसार-समुद्र से पार करने वाले शंकर !! ब्राप संसार की रक्षा के लिये यहाँ ही निवास कीजिये और अपने दर्शन करने वालों का सदा उद्धार करते रहिये।"

शिवजी ने ब्राह्मणों की इस प्रार्थना पर उनको सद्गित देकर, भक्तों की रक्षा के लिये उसी शोमायमान गढ़े में निवास किया। तब से शिवजी ज्योति-लिंग के रूप में ब्राज तक वहीं विराजमान हैं। संसार में वही पुरुष धन्य है जिसने भगवान् शिव जी की शरण में सब प्रकार से अपने को अर्पण किया है। क्योंकि:—

सा जिह्वा या शिवं स्तौति तन्मनो ध्यायते शिवम् । तौ कर्णौ तत्कथालोलौ तौ इस्तौ तस्य पूजकौ ॥ ७॥ (ब्रह्मखएड) क्रिजोत्तम सुमेधा द्यौर 'सोमवती'

विद्मं देश में 'वेदमित्र' और 'सारस्वत' नामक दो विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। इन दोनों में घनिष्ट मित्रता थी। परस्पर में एक दूसरे के लिये जाने देने को तैयार रहते थे। उनकी श्रादर्श मेत्री जीवन भर निचह गई। यथावसर संयोगवर इन दोनों के (वेदमित्र के 'सुमेधा' श्रीर सारस्वत के सोमवान्) एक २ सुन्दा सुशील पुत्र उत्पन्न हुए। ये दोनों वालक एक से, एकही वेषधारी हुए, माने एकही माता के युगल सहोदर भाई हैं—देखने वाले चिक्तत होते थे श्रीर मनहीं मन विधाता की रचना पर मुग्ध होते थे। इन दोनों वालकों में भी पारव्यर्थि प्रेम वैसाही हुश्रा, जैसे इनके जनकों में था। इनके सभी संस्कार एकही सार्थ होते चले गये। थोड़े ही दिनों में ये दोनों द्विज्ञ बालक साङ्गोपाङ्ग श्रुति शाह पुराण में निपुण हो गये। जैसे २ इनकी वुद्धि विमल होती गई तैसे २ शरीर भी सुसंगठित एवं सुडौल होता गया। प्राणायाम एवं व्यायाम सम्बन्धी कियाओं में भी ये सदा निपुण होते गये।

इस प्रकार इन दोनों वालकों ने अपने अद्भुत गुणों से माता-पिता को वड़ा आनिन्दत किया। एक बार उन दोनों मित्रों ने अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर प्रेमपूर्वक कहा—"तात! तुम दोनों के विवाह का समय उपस्थित है। अतः धनोपार्जन की इच्छा से विदर्भ देश के राजा को तुम लोग अपने गुणों द्वारा जाकर
मुग्ध करो।" पिता की आज्ञा से वे दोनों विद्वान युवक महाराज विदर्भ की
राजधानी में पहुँचे। महाराज ने उन विद्वान द्विजकुमारों की चमत्कारी जानने
के लिये हँसते हुए कहाः—

"विद्वन् ! निषधदेश की राजमहिषी (रानी) वड़ी पितव्रता हैं। वह प्रति सोमवार को पार्वती सिंहत महादेव जी का पूजन करती तथा सोमव्रत रहा करती हैं। इस कारण तुम दोनों में एक स्त्रीका वेष श्रीर दूसरा पुरुष (उसके पित) का वेष धारण कर उसके घर जावो, श्रीर भोजन करके मेरे यहां श्रावो।" परन्तु द्विज कुमारों ने कहा—'माता, पिता, गुरु तथा राजकुल में छल-कपट क्ष करने वाले मजुष्य शीव्र ही विनष्ट हो जाते हैं। श्रतः ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हम लोग छल-कपट करना नहीं जानते, न कर सकते हैं"। राजा बोले—श्राप लोग विद्वान हैं, 'आजा गुद्धणां ह्यविचारणीया" का स्तरण करके गुरु, पिता, माता पवं राजाशों की श्रवहेलना करना उचित नहीं—विशेषकर राजाशा का मंग करना तो प्रत्यक्ष दएड का कारण होता है। राजा की श्राज्ञा का किसी प्रकार प्रत्युत्तर नहीं होता, उसका उत्तर कार्य द्वारा ही दिया जा सकता है। राजा की पेसी गम्भीर एवं नीति युक्त बात सुनकर श्रथवा दएड-भय के कारण दोनों ने 'बहुत श्रव्छा' कहकर वैसा ही किया।

सारस्वत के पुत्र 'सोमवान ने स्त्री का श्रौर वेदमित्र के पुत्र सुमेधा ने पुरुष (पति) का वेष बनाया। सुन्दर स्वच्छ वस्त्रामूषणों से सुसज्जित होकर वे दोनों (कृत्रिम दम्पति) सोमवार के दिन निषधराज में पहुँचे, श्रौर श्रन्तः-पुर में जाकर रानी द्वारा सविधि पूजित हुए। श्रपने पातित्रत्य प्रताप से उन दोनों को कृत्रिम दम्पति जानते हुए भी महारानी ने उनमें शिव-पार्वती का ध्यान-श्रावाहन करके विधिवत् पूजन किया। श्रन्त में श्रनेक प्रकार के स्वासु भोजन करा कर, गो-भूमि-हिरएय के दानों से उन्हें सन्तुष्ट करके विदा किया।

A

취

ही

1

Ħ

ती ग्रां

क्ष नृपे गुरौ नटे धूर्ते कुटुन्यां च बहुश्रुते । माया तत्र न कर्त्तव्या यतः सा तैर्विनिर्मिता (द्विजेन्द्र)

F

3

f

a

Ŧ

100

रानी ने जिसको पार्वती (स्त्री) की बुद्धि से पूजा था, वह स्त्री बन गया। पुरुष ने पूछा—सखे! तुम वास्तव में तो स्त्री हो नहीं। फिर स्त्री की भाँति हाव. भाव या और बातें क्यों करते हो ? तुम तो एक विद्वान् पुरुष हो, और हम तथा तुम आपस में एक दूसरे के मित्र हैं। यह वचन सुनकर वह अपने पिता के पास गया श्रीर सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसके पिता भी इस वृत्तान्त से शोक व्यव्र हो, दोनों बालकों को साथ छेकर विदर्भ-नरेश के पास गये। सारस्वत ब्राह्मण ने राजा से कहा—महाराज! त्रापकी आज्ञा से छल-कपट द्वारा के बदल कर अनुचित कर्म करने वाले मेरे पुत्र की यह दशा देखिये ? यह स्त्री हो गया है, अब क्या किया जाय ? आपने मेरी सन्तान नष्ट कर दी। आज से मेरे पितर लोग निराश हो गये होंगे। भला यह कौन सा पाण्डित्य है? ब्राह्मण का वचन सुनकर राजा श्रार्श्वायत हो गये श्रीर रानी के प्रभाव की मनहीं मन प्रशंसा करने लगे। अन्त में राजा ने ऋषि-मुनियों को बुलाकर यह घटना सुनाई और द्विजकुमार के श्रपने पहिले वेष में हो जाने का उपाय पूछा-ऋषिये ने कहा - राजन् ! इसमें आप अवश्य दोष के भागी हैं। अतः आपको ही इसक उपाय करना चाहिये। क्योंकि आपके राज्यमें—विशेषतः आपके ही करने हे ऐसा हुआ है। इसलिये आप भगवान शंकर की आराधना करें; क्योंकि यह पार्वती शिव की ही प्रेरणा से ऐसा हुआ है। भला इसे दूसरा कोई कै। हटा सकता है ?

संसार में श्रधट-घटना-पटीयसी भगवान् शंकर की माया ही सर्घत्र काम कर रही है। श्राश्चर्य से श्राश्चर्य, कठिन से कठिन काम प्रभुकी रूपासे श्रासान हो जाते हैं। केवल उनकी भृकुटि—विलास से ही संसार का प्रलय तक हो जाता है। यह कौन सी श्राश्चर्य की बात है ? श्राप उनकी ही श्राराधना करें। इसी से द्विजकुमार के स्नीत्व का रूप बदल जायगा श्रीर वह फिर श्रपने वेष में होकर श्रपने पिता को श्रानन्दित करेगा।

शिव-पार्वती की आराधना करने लगे। संयम-नियम से निराहार रहका भगवती पार्वती के ध्यान में मग्न रहते हुए जब तीन रात्रि बीत गई, तब राजा ने पार्वती की स्तुति करना प्रारम्भ किया। स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने राजा को दर्शन किया, और कहा कि जावो, तुम्हारा मनोरथ शीघ ही सिद्ध हो जायगा। परन्तु तुम चाहते क्या हो १ सो वर माँगो। राजा ने हाथ जोड़कर

विनय पूर्वक कहा— "मातः! आपके अनुप्रह से इस द्विजपुत्र का स्नीत्व छूट जाय और किर पुक्षत्व प्राप्त करे।" देवी ने कहा— 'राजन्! मेरे भक्तों द्वारा जो काम हो जाता है, वह दस लक्ष वर्षों तक श्रामिट रहता है, वह श्रन्यथा किसी प्रकार नहीं हो सकता। तब राजा पुनः बोले— 'जगजजननी! इस ब्राह्मण् को यही एक पुत्र है, यह विना पुत्र पाये जीवित न रहेगा; बल्कि मेरे ऊपर मरने को तैयार है। अतः में ब्रह्महत्या का भागी बनूँगा। इसलिये मुम्म पर दया कीजिये 'जिससे इस महापातक से यह जन पृथक् रहे'। पार्वती जी बोली—मेरे अनुप्रह से उस ब्राह्मण् को एक दूसरा उत्तम पुत्र होगा। 'सोमवती' नाम की कन्या इस सुमेधा ब्राह्मण् को स्त्री होकर सुलोपमोग करेगी। उसी के गर्म से एक तेजस्वी—इस द्विजनन्दन से भी सुन्दर—सुशील पुत्र उत्पन्न होगा, यह कहकर भगवती पार्वती जी वहीं श्रन्तर्थान हो गई'। राजा प्रसन्निक्त होकर राजधानी को लोट गये और ब्राह्मण भी यथाकाल सुन्दर यशस्वी पुत्र पाकर श्रानिद्त हुए।

भला, शिवभक्तों की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ? ऋषियों ने भी तो यही कहा है कि:—

> ''तेऽख्नुवन्नथ पार्वत्याः शिवस्य च समीहितम् । तद्भक्तानां च माहात्म्यं कोऽन्यथा कर्तुमीश्वरः॥'' (ब्रह्मोत्तरखण्ड)

#### いるから

#### ऋषिवर्य बालिखल्य

į

ă

1

河町間

d

बालखिल्य ऋषि कतुस्वयम्भु मनु के पुत्र थे। इनकी माता का नाम था "सन्नीति"। पक बार इन्द्र ने इनका अपमान किया। उस समय बालखिल्यों ने कोचित हो, तपोवन में जाकर तप करने का विचार किया। प्राणी के प्रारब्ध क जब जैसे होते हैं, वैसे ही विचार उनके मन में उद्गुद्ध होते हैं, और प्राणी किसी भी निमित्त से वैसा करने को तत्पर हो जाते हैं। फिर तत्पर हो जाने पर उसके उपयुक्त साधन भी उन्हें स्वयं मिलने लगते हैं। इस नियम के अनुसार बालखिल्य अपने प्रारब्धवश जगत्पिता भगवान श्री शंकर की शरण में जाकर

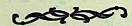
<sup>(%)</sup> जैसी हो भवितव्यता, वैसी मिले सहाय। आपु न आवे ताहि पै, ताहि तहां ले जाय।। [तुलंसी]

ध्यान-मग्न हो, तपस्या करने लगे। भगवान् भूतनाथ में भक्ति-भाव होना जीव के भावी विभृति का हेतु होता है—जो देवताश्रों के लिये भी सदैव दुर्लभ है। मनुष्यों में तो कठिनता से—या प्रभु की प्रेरणा से सम्भव हो सकता है।

जो व्यक्ति सब प्रकार से अनन्यगित होकर भगवान् स्वयम्भु की शर्ष छेते हैं, वे अवश्य अभय होते हैं। उन्हों को संसार से छुटकारा मिलता है—जो शिवाराधन में तत्पर रहते हैं। उन ऋषियों ने मनसा, वचसा और कर्मणा ता किया। भक्त—वत्सल शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया। ऋषियों ने नेत्र खोलकर देखा तो सामने व्याप्रचर्म पर स्थित, सिर की जटा में गंगा, मस्तक में बाल चन्द्रमा को धारण किये, पंचमुख, नीलकएठ, त्रिलोचन, समस्त आगे में विभूति रमाये, सर्प के कंकण—कण्ठहार धारण किये, नाग—वासुकी के यक्कोपचीत धारण किये तथा हाथों में त्रिशूल—डमक लिये हुए, एक विचित्र स्वरूप दृष्टिगोचर हुआ । ऐसे दिव्य अलीकिक स्वरूप को देखकर बालखिल मुनियों ने उनकी स्तुति की। शिवजी उनपर प्रसन्न होकर बोले:—ऋषिगण। में तुम लोगों पर प्रसन्न हूं। मेरी छपा से तुम स्वर्ग से असृत लाने के वासं सुपर्ण (गरुड़) को उत्पन्न करोगे। बालखिल्य ऋषि प्रसन्न होकर अपने आशा सुपर्ण (गरुड़) को उत्पन्न करोगे। बालखिल्य ऋषि प्रसन्न होकर अपने आशा में गये, और मनोरथ की सद्यः सिद्धि पाकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

"म्रुपर्णं सोमइन्तारं तपसोत्पादयिष्यथ ॥"

(म० भा० अनु० प० १४ अ०



#### योगाचार्य जैगीषव्यजी

जैगीषव्य नाम के एक महर्षि काशी में रहते थे। वे नित्य विश्वनाथ जे का दर्शन करके भोजन करते थे। एक समय विश्वनाथ जी ने गिरजा देवी के साथ काशी से मंद्राचल के लिये यात्रा की। जैगीषव्य जी ने भी उसी दिन के ऐसा व्रत कर लिया कि जब तक विश्वानाथ जी पुनः काशी नहीं आयेंगे औ मुक्ते उनके दर्शन जब तक न होंगे, में श्रन्न ग्रहण न कहँगा। शिवजी के ली श्राने तक में बराबर निराहार ही रहूँगा।

किस प्रकार उन्होंने इस व्रत का पालन किया—"योग के वल से व भगवान शंभु के ब्रानुप्रह से—" इसे या तो वे स्वयं ब्रथवा शिवजी ही जान

क्ष तस्यैव च प्रसादेन भक्ति रूत्पद्यते नृग्णाम्। [शिवपुराग्ण]

थे। शंकर जो ने लौट कर काशो आते ही नन्दी से कहा—"हे नन्दिन् ! यहाँ पर एक मनोहर गुहा है—जिसमें मेरे एक परम भक्त 'जैगीषव्य' नाम के तपस्वी बड़े कठोर नियम का पालन कर रहे हैं। उनके शरीर में केवल चर्म और अस्थि शेष रह गया है। जब से में काशो से परम रम्य मंदराचल चला गया, तभी से ये आहार छोड़कर कठोर नियम का पालन कर रहे हैं। तुम जाओ और इस दुद्वती मेरे भक्त को यहाँ बुला लाओ। इस अमृत के समान छीला—कमल को अपने साथ लेते जाओ। यह जीवन, चल और बुद्धि देने बाला है। इसे उनके अंग में स्पर्श करा देना और फिर उनको उठा कर यहाँ ले आना। नन्दी भगवान शंकर से उस लीला—कमल को लेकर उस गुफा की ओर चल दिये। वहाँ जाकर उन्होंने लीला—कमल को उनकी देह से स्पर्श करा दिया। स्पर्श कराते ही उनका शरीर हुए-पुष्ट और सर्वाङ्ग-सुन्दर हो गया। नन्दी न उनको उठाकर देवदेव महादेव जी के सामने ला उपस्थित किया।

जैगीवव्यजी गिरजादेवी के सहित शोभायमान श्रीशंकर भगवान् को श्रपने सामने देखते ही श्रूमि पर दण्डवत् गिरकर प्रणाम करते हुए इस प्रकार स्तुति करने लगे:—

> नमः शिवाय शान्ताय सर्वज्ञाय शुभात्मने । जगदानन्द-कन्दाय परमानन्द-हेतवे ॥ १ ॥ श्रक्षपाय सरूपाय नानारूपधराय च । विरूपाचाय विधये विधिविष्णुस्तुताय च ॥ २ ॥

जो शिव शान्त, सर्वज्ञ, मंगलमय, श्रानन्द-कन्द, परमानन्द के निदान, रूप रहित होकर भी जो रूपवान्, श्रनेक रूप धारी, विधिस्वरूप, ब्रह्मा श्रौर विष्णु के द्वारा स्तुति करने योग्य श्रौर विरूपाक्ष हैं, उनको हम वारंबार नमस्कार करते हैं।

जैगीषव्यजी इस प्रकार शंकर जी की अनेकानेक स्तृति करके टूँ डे वृक्ष के समान उनके सामने खड़े हो गये। चन्द्रभूषण महादेव जी ने प्रसन्न होकर उनसे कहा—'हे मुने! मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूं वर माँगो'। ऋषि ने कहा, कि हे परम-पद्दायक भवानीश! हे देवदेव !! यदि आप मुक्तपर प्रसन्न हैं तो यही वर दीजिये, कि "मैं आपके चरण-कमलों से कभी दूर न होऊँ।" दूसरा वर यह माँगता हूं कि इस शिवलिंग में आपका सदा निवास रहे।" ईश्वर ने कहा कि है अनघ ! यह दोनों वर मैं तुमको देता हूँ और इसके साथ मैं तुमको निर्वाण-साधक योगशास्त्र का दान करता हूं। आज से समस्त योगियों के बीच तुम 'योगाचार्च्य' होवोगे।

भगवान् ने कहा कि हे मुने! तुमने ऐसा कठोर तप किया है जैसा कदाचित् किसी ने न किया हो। संसार में अनेक अत हैं, पर तुम्हारे इस अत की
बराबरी कोई नहीं कर सकता। मेरा दर्शन करके भोजन करने का नियम सबसे
उत्तम अत है। मेरे दर्शन किये बिना जो कुछ खाया जाता है, वह अधम वस्तु
है। फल-फूल मुक्ते समर्पण किये बिना जो मनुष्य मोजन कर छेता है, वह
इक्तीस जन्म वीजमक्षी जीव (पक्षी) होता है। तुम्हारे इस नियम का
सोलहवां हिस्सा भी अन्य कोई कठोर से कठोर अत नहीं है। हे जैगीषव्य!
तुमनेजो कुछ प्रार्थना की, वह तो पूरी होगी हो। इसके साथ-साथ तुमको
योगशास्त्र भी प्रदान करता है। इससे तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी और आज से
सदा तुम्हें सब लोग 'योगाचार्य' मानेंगे। तुम्हारे हाथों से संस्थापित
"जैगीषव्येश्वर" के दर्शन करने से तीन हो वर्ष में योग-सिद्धि हो जायगी।

ऐसा वर देकर भगवान् शिवजी श्रपने लोक को चले गये श्रीर जैगीषच्य इतकृत्य होकर संसार के उपकार में लग गये।

स्कन्दपुराण में लिखा है, कि जैगीषव्येश्वर नामक शिवलिंग का दर्शन बड़े भाग्य से होता है। उनकी तीन वर्ष तक सेवा करने से योग-सिद्धि प्राप्त होती है। इस शिवलिंग के दर्शन-स्पर्शन और पूजन से सब पापों का विनाश हो जाता है। छिखा भी है:—

जैगीषच्येश्वरं नाम लिंगं काश्यां छुदुर्लभम् । त्रीणि वर्षाणि संसेच्य लभेद्योगं न सशयः ॥ ८०॥ ग्रत्र ज्येष्ठेश्वरत्तेत्रे शिवलिंगं छुसिद्धिदम् । नाश्येद्घसंघानि दृष्टं स्पृष्टं समर्चितम् ॥ ८१॥ (काशोखंड उत्त० ६३ अ०)



#### इच्वाकु-ब्राह्मण्

प्राचीन काल में 'इक्ष्वाकु' नामक एक ब्राह्मण बड़ा विद्वान् बुद्धिमान् तथा निखिल-कला-निपुण हुआ। धनाह्य होते हुए भी यह न यज्ञ करता न दान देता था। न देवी-देवताओं का पूजन करता था न अतिथि-सेवा ही। केवल प्रयत्न से अच्छे अच्छे भोग्य पदार्थों द्वारा अपना शरीर पालन करता और सुन्दर वस्त्राभूषणों से अपने को संस्कारसिंहत समम्तता था। ऐसे उस स्वार्थी ब्राह्मण की आयु एक लक्ष वर्ष की हुई। इसी वर्ष के भीतर अन्त वाले पाँचवें मास के तीसरे दिन उसने रात्रि के समय पुराण में इस प्रकार की कथा सुनी:—

"जो कोई अपने इकट्ठे किये हुए धनों में से कुछ भी दान नहीं करता या स्वयं ही उसका उपभोग करता रहता है, उसका उतने वर्षों का भोग-विलास करना सब व्यर्थ पवं निस्सार हो जाता है। उस प्राणों को क्रमण उतने वर्ष तक नरक भोगना पड़ता है। उसके बाद मृत्युलोक में जन्म लेकर वह दरिष्ठी रोगी, बन्धुरहित, दुष्टा स्त्री वाला, बहुत संतान वाला होता है। वह अपना निर्वाह भिक्षा मांगे हुए अन्नों से करता है अथवा मार्ग में पड़े हुए अन्नों को बोन २ कर अपना निर्वाह करता है। जीते-जी युवा होते ही अंग-भंग नेत्रों से हीन, तथा कानों से रहित होकर नाना प्रकार का कष्ट भोगता है।"

पेसी कथा सुनकर इक्ष्वाकु ब्राह्मण अत्यन्त दुःखित हुए। तत्पश्चात् अपने कर्मों का स्मरण करके मन में पश्चात्ताप-सन्ताप, शोक-मोहादि करते हुए उसकी श्रकाल मृत्यु हुई। ग्रमपुरी में जाकर उसने प्रेतनाथ यमदेव द्वारा श्रपना कर्म-विपाक इस प्रकार सुना :--

"तुमने अपने पाप-कर्मों से लिप्त होकर कुछ पुष्य भी नहीं किया। केवल पाप ही से पाप का घड़ा भरा। इससे तुमको यहाँ रौरव कष्ट भोगना पड़ेगा। अब तुम्हारी थोड़ो-सी आयु शेष है—इससे तुम अपने पहिले शरीर में चले जाओ और अब से अपने कल्याण के निमित्त साङ्गोपाङ्ग यह्म-त्रतादि करो। द्विजों को चेद पढ़ाओ, ब्राह्मणों को भोजन करावो। भस्म और रुद्राक्ष-माला धारण करके देवदेव महादेव तथा आदि शक्ति सती पार्वती का पूजन-भजन करो। पैसा करने से तुम कभी इस (यम) लोक मैं न आवोगे और अन्त में मुक्त हो जावोगे। यदि ऐसा न करोगे तो बारम्बार यम-यातना के घोर चक्र में पीसे जावोगे।"

यमराज के ऐसे युक्तिसंगत वचनों को सुनकर वह ब्राह्मण अगने पूर्व शरीर में चला गया और जब तक जीता रहा, बराबर शिवजी का पूजन करता रहा। जब वह बृद्ध हो चला और उसकी सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो चलीं, तब वह एक दिन महामुनि शिवभक्त जाबालि ऋषि के दर्शन की अभिलाषा से मन्दरा-चल पर्वत पर गया। वहाँ जाबालि ऋषि तप कर रहे थे। साथ ही वेदाध्यापत और स्मृति-शास्त्र-पुराणों का मनन किया करते थे। इक्ष्वाकु ब्राह्मण ने मन्दरा-चल पर्वत पर जाकर उस अनुपम आश्रम की इस प्रकार शोभा देखी:—

( ग्राश्रम-वर्णन )

"मन्दराचल के विशाल शिखर पर—जहाँ ऊँचे २ सुर-सदन बने हुए थे, जो यस्न, गन्धर्व तथा किन्नरों के मधुर गान से गूँज रहे थे। सिद्ध महात्मात्रों तथा योगी मुनियों की शान्त चित्तवृत्ति से जहाँ सुखद शान्ति का साम्राज्य छाया हुआ था। जिस आश्रम में श्रुति-स्मृति रूपिणी घेतु स्वच्छन्द विचर रही थी, आश्रम के श्रास-पास मनोहर नगर वसे हुए थे, बापी कूप तड़ाग तथा उपवनी से सुशोमित एक ऊँचे मन्दिर में चारों वेद स्थापित थे-जिनकी सुन्दर वेदी देखती ही बनती थी ! उसीके निकट एक देदी प्यमान सिंहासन पर कपूर के समान श्वेत एवं गोदुग्ध के समान शुद्ध कान्ति वाले योगिराज शङ्करजी विराजमान थे। चन्द्रशेखर भगवान् अपने तीनों नेत्रों को खोले, पांचीं मुख से मन्द २ हँसते हुए सुर-मुनियों के मनको मोह रहे थे, मुएडों की माला धारण किये, नाग को यहोपचीत बनाये चम्पा के समान पीछे रंग के-से शोभित होते थे। सुन्दर रत्नों के कुएडल धारण किये व जटाजूट से सुशोभित वे गङ्गाधा विराजमान थे। नाना प्रकार के भूषणों से विभूषित चन्द्नादि लेपों से सुगन्धित जिनके वाम भाग में गिरजा विराजती थीं श्रौर उनके मुखारविन्द को योगिरा शिवजी देख रहे थे, मुन्ध सुन्दर मुखवाली हाथों में सुवर्ण का कमल धारण किये वह देवी प्रसन्न हो रही थी। श्रीकार की पंखा से देव देव को पवन कर रही थीं। पार्वती जी पुर्णों की माला शिवजी के गले में पहनाती हुई पूजा कर रहीं थी। ज्ञाप्ति, विरक्ति दोनीं स्त्रियां योगाभ्यास को चामर बनाये हुए भ्रार्ष किये, यम नियम सब उनके किङ्कर बने हुए, उनकी सेवा में उपस्थि थे। प्राणायाम आगे खड़े थे, वे प्रत्याहार भी सुन्दर वर्ण धारण किं उपस्थित थे, कुबेर उनके ध्यान में मग्न थे। सत्य सेनापति थे, ब्रह्मा से लेक कीट-पतंग तक सव पशु रूप थे। उनके पित शिवजी थे, पशुम्रों के स्वामी धर्मा श्रीर श्रधर्म सब माया के पाश से सब बँधे हुए हैं, उनको छुड़ाने के लिये वहीं काशिका पुरी है। ऐसे उमानाथ का स्मरण प्राणिमात्रको करना चाहिये। क्योंकि उनकी सेवा करने से श्रमित भोगों को भोगकर प्राणी शिव-लोक में जाता है। यम, विष्णु, इन्द्रादि उनके पुर के द्वारपाल हैं। लच्मी, सरस्वती उनकी देहली साफ करती हैं। अन्य देवताओं की स्त्रियां सब दासीकर्म में नियुक्त हैं। अर्थात् सब देवता उनके दास और देवियां उनकी दासियां हैं। पेते सुन्दर मन्दराचल पर स्थित जावालि-ग्राश्रम को इक्ष्वाकु ब्राह्मण ने देखा। मुनिवर को प्रणाम करके ब्राह्मणने कहा-'मुनिवर! हम इस महापर्वत के ऊँचे शिखर पर जाना चाहते हैं; परन्तु जा नहीं सकते। श्रतः हमारा कल्याण कैसे होगा ? जावालि मुनि बोले —"हे विप्र! हमने भी दिव्य दृष्टि से तुम्हारा सब हाल जान लिया है। तुमने भी जान लिया होगा कि अब केवल दश दिन आयु शेष है; पर तौ भी धर्म-पुण्य नहीं किया। अतः अनाभ्यास के कारण इतने दिनो में न तो तुम तप कर सकते हो, न योगसाधन ही। सामर्थ्य न होने से देवतात्रों की पूजा-श्रची भी नहीं कर सकते और न यज्ञ, व्रत, तडागादि खुदाना, देव-मन्दिर वनवाना ही हो सकता है। श्रव न तीर्थयात्रा कर सकते हो, न कोई प्रायश्चित्त। इसलिये पे ब्राह्मण ! श्रब तुम यहां ठहरो या चले जावो।" यह सुनकर इक्ष्वाकु विप्र बोले—'जिस ब्राह्मण ने जन्म भर ब्राह्मण का ही धर्मा-कर्म किया हो, वही हमारे पापों का परिहार कर सकता है'-यह निश्चय है। इस प्रकार के सर्वगुण-सम्पन्न ब्राह्मणु श्रापही हैं। श्रतः बताइये-किस श्रेष्ठ धर्म्म से हमारा पाप नष्ट होगा। श्रव इस नरक-यातना से मेरी रचा की जिये। मैं श्रापकी शरण में हूं। शरणागत का पालन करना सब धम्मों से बढकर है।

जावालिऋषि वोले—'हे द्विज! हम सत्य कहते हैं, तुम्हारे पापों का नाश थोड़े ही काल में नहीं हो सकता।' इक्ष्वाकु बोले—'हे मुने! शरण में आये हुए हमारी रक्षा करो। अब हमारा काल बीत जाना चाहता है।' जाबालि बोले—'हे विप्र! वेदों का रहस्य, हमारे प्राणों से भी प्यारा, ब्रह्मादि देवताओं का किया हुआ पूजन, शिवलिंग-पूजन है। यह सब पापों का नाश करता है, मुक्ति-भुक्ति का दाता है। इससे तुम शिवजी की पूजा करो; क्योंकि जिसकी जिह्ना पर 'शिव-शिव' उच्चरित होता रहता है, शीव्र ही उसके महापाप नष्ट हो जाते हैं। शिवको प्रदक्षिणा करके जो मजुष्य नमस्कार करता है, उसका वह नमस्कार समस्त भूमि की प्रदक्षिणा करने के समान फलदायक होता

T

1

1

19

वे

F

मी

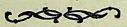
है। शिवजी के मन्दिर में जो कोई बाजा बजाता है, वह देवताओं के समान मान्य (पूज्य) होता है। यही संक्षेप रीति से शिव-पूजन की विधि है।"

हे ब्राह्मण ! श्रव श्रापकी थोड़ी श्रायु शेष है । श्रतः शिवजी की पूजा करो । चाहे तीनों काल में, चाहे दोनों काल में; वन में उत्पन्न पुष्पोंसे शंकर जोकी प्रातःकाल पूजा किया करो। विख्यपत्र तथा श्रन्य सुगंधित कमल-कदम्ब-पुन्नाग् कनैल-तुलसीदल-मदार-श्रकौवा-धतुर के पुष्प-दूर्वा श्रक्षत से शिवजी का पूजन करो। 'तैल के पकाये हुए श्रन्न तथा चम्पा-पुष्प से शिवजी का पूजन कदापि न करो।

इसिलये घृतपक्व श्रन्न शिवजी को निवेदन करे—ऐसा पूजन-विधान जानका तुम श्रव शिविलग का पूजन करो। इस प्रकार जब जावालिमुनि ने कहा तव से इक्ष्वाकु ब्राह्मण शिव-पूजन में श्राट दिन तक बरावर लगे रहे। नवें दिन भी प्रातःकाल स्नान करके इसी प्रकार पूजन किया।

जब दसवें दिन उसकी मृत्यु हुई, तब यमपुरी से यमदूत और शिवलोह से शिव के गण उसे छे जाने के लिये आये। दोनों दल में बड़ा विवाद हुआ। अन्त में यह निर्णय हुआ कि शिवलिंग के अर्चन-पूजन करते हुए इसका प्राणाल हुआ है। अतः यह शिवधाम में ही जाय। सुन्दर पुष्प चन्दनादि से सजे विमार पर बैठाकर शिवगण उसे कैलासपुरी-भगवान् श्री शंकर जी की शरण में हे गये, और वह ब्राह्मण मुक्त होकर परमानन्द को प्राप्त हुआ। ठीक है:—

बहुनात्र किमुक्तेन यस्य भक्तिः शिवे दृढा । महापापोपपापौघ-कोटिग्रस्तोऽपि मुच्यते ॥ २० ॥ (पद्म पुराख)



# इकासीवाँ रतन

#### शिवभक्त 'तण्डी' ऋषि

सत्ययुग में तण्डी नाम के एक ऋषि थे। इन्होंने दस हजार वर्ष तक समाधि लगाकर परम दयालु महादेवजी की आराधना की। एक बार अविनाशी परमात्मा में तल्लीन होते हुए, परम अद्धा के साथ वे मनही मन चिन्तना कर रहे थे कि जिन परमात्मा को सांख्यवेत्ता लोग पर, प्रधान, पुरुष, अधिष्ठाता ईश्वर कहकर गान करते हैं श्रीर योगीलोग सदा चिन्तन करते हैं — ज्ञानी लोग जिनको जगत् की उत्पत्ति श्रीर विनाश का कारण समभते हैं — देवता, श्रसुर तथा मुनिगण जिनसे श्रेष्ठ श्रीर किसी को नहीं मानते (परं यस्मान्न विद्यते) उन अजन्मा, ईशान, श्रादि-श्रन्त से रहित, श्रानन्दमय परम पवित्र भगवान् की मैं शरण लेता हूं। तएडीऋषि इस प्रकार भावना कर हो रहे थे कि इतने में शंकर भगवान् ने दर्शन दिया।

# "तावदेव गिरेः शृङ्गे व्याघ्रवर्मीपरि स्थितम् । दद्शे पञ्चनयनं नीलकएंठ त्रिलोचनम् ॥"

उस श्रविकारी, उपमारहित, श्रविन्त्य, शाश्वत, ध्रुव, देश श्रीर काल से श्रसीम, ब्रह्मरूप, गुणातीत, निर्गुण परमानन्दस्वरूप, श्रक्षर, मोक्षस्वरूप, मनु, इन्द्र, श्रिन, पवन, विश्व, श्रीर ब्रह्मा के गतिरूप, श्रश्नाही, श्रचल, शुद्ध बुद्धि से ब्रह्म करने योग्य, श्रसंख्य ज्ञानियों को भी दुष्प्राप्य, सकल विश्व के कारणुरूप ईश्वर के दर्शन पाने पर "तण्डीऋषि" इस प्रकार स्तुति करने लगेः—

"हे सर्वश्रेष्ठ! देव!! आप पित्रत्र से भी पित्रत्र हैं—गतिवालों की भी गित हैं। हे परम कल्याणकारी! हे परम सत्य!! आपको नमस्कार है! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेवता और महिंष भी आपके स्वक्ष्य को यथार्थ रीति से नहीं जानते। फिर मैं जानही कैसे सकता हूँ श्रियापही मोक्ष के द्वार को खोलते और बन्द करते हैं। आपही ब्रह्मा, विष्णु, शित्र, स्वामी कार्त्तिकेय, इन्द्र, सिवता यम, वरुण, चन्द्र, मनु, धाता, विधाता और धन के अधिपित कुवेर हैं। हे मगवन्! आज हम वास्तव में कृतार्थ हुए हैं। आज हमें निश्चय ही सत्युक्षों की वह गति मिली है—जिसे पाने के लिये पित्रत्र ज्ञानीलोग भी सदा प्रार्थना करते रहते हैं। जिन सनातन देव का साक्षात्कार केवल ज्ञानी को ही होता है और जिनको में अपने अज्ञान के कारण बहुत समय तक न जान सका था, आज अनेक जन्मों के अनन्तर मैंने उनकी साक्षात् मिक्त पायी है। मक्तों पर शीघ्र ही अनुब्रह करने वाले, हृद्याकाश में विराजमान ब्रह्म आप ही हैं। आप सब के हृदय में वास करने वाले परमात्म-स्वकृप हैं। जो श्रद्धालु पुरुष मिक्तयोग का आश्रय लेकर आपकी शरण लेता है, उसके सामने प्रत्यक्ष होकर आप

14

a)

N

11

दर्शन देते हैं, श्रौर तपस्वियों को जो स्थान (परम धाम ) मिलता है, वही विमल धाम श्राप उस शैव को भी देते हैं।"

परम द्यालु शिवजी ने उनपर प्रसन्न होकर कहाः—"हे प्रिय भक्त ! तुम श्रक्षय, श्रविकारी, दुःखरिहत, तेजस्वी श्रीर दिव्यज्ञान वाले होवो। तुम्हारा पुत्र यजुर्वेद की तिएडशाखा के कल्पसूत्र का करनेवाला होगा। हे वत्स ! वोलो तुम्हारी क्या कामना है।"

तिएडऋषि ने हाथ जोड़कर कहा:—''त्विय भक्तिर्देढ़ास्तु में।" हे भगवन्! श्रापमें मेरी दृढ़ भिवत हो—यही एकमात्र प्रार्थना है—इसके पश्चात् देवताश्रों श्रीर ऋषियों से वन्दित भगवान् शंकर जी मुनि की कामना पूरी कर, वहीं श्रन्तर्थान हो गये।

ब्रह्मा भवश्च विष्णुश्च स्कन्देन्द्रौ सविता यमः। वरुणेन्द् मनुर्भाता विधाता त्वं धनेश्वरः॥ २२॥ (म॰ भा० अनु० प०)



# बयासीवाँ रतन

धुन्धुमूक ब्राह्मण और उसके पुत्र

प्राचीन काल में 'धुन्धुमूक' नामक एक सामर्थ्यवान् ब्राह्मण था। उसते एक बार अमावास्या के दिन रुद्र मुहूर्त में दिन के समय ही, अपनी 'शिल्पा नाम की स्त्री से उसकी इच्छा बिना, संगम किया। यथासमय गर्भ के पूरा होते पर शनि-दृष्ट छग्न में, माता-पिता का अरिष्टकारक एक दुष्ट पुत्र उत्पन्न हुआ। जनन-काल में शिल्पा को बड़ी वेदना हुई। उस समय अशुभ के अनेक लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे।

पुत्रजनम के समय घुन्धुमूक ने ऋषि-मुनियों को बुलाकर उसके विषय में पूछा 'कि यह पुत्र कैसा है ? तब मित्र और वहण ने कहा—यह पुत्र बड़ उत्पाती तथा क्रूर बुद्धि वाला होगा, इसपर वसिष्ठजी ने विचार कर्ष कहा—''हाँ, यह वालक दुए तो होगा सही; परन्तु बृहस्पति के अनुप्रह से यह सब पातकों से मुक्त हो जायगा। घुन्धुमूक ब्राह्मण यह सुनकर बड़ा दुःखित हुआ परन्तु क्या करे। प्रारब्धवश सब सहना ही पड़ता है। किसी प्रकार जातकर्म ब्रादि संस्कार करके यथाकाल उसे पढ़ा-लिखाकर चतुर वनाया श्रीर उसका विवाह भी कर दिया।

कालान्तर में वह ब्राह्मण्छत अपनी स्त्री को छोड़कर अन्य स्त्रियों से ध्यिमचार करने लगा। श्रीर एक शूद्री में श्रासक हो, उसी के साथ मद्यपान करता हुआ वह दुष्ट दिनरात पापकर्म में लिस रहने लगा। खाना-पीना, सोना-जागना, सब काम उसी के यहाँ करने लगा। महा पितत उस ब्राह्मण्पुत्र को सभी-हेय दृष्टि से देखने श्रीर उसका श्रनादर करने छगे।

दैययोग से एक दिन दोनों में घोर विरोध हो गया। इसिलये अवसर पाकर उस नीच ब्राह्मण ने उस शूद्रा को मार डाला। इसपर रुष्ट होकर शूद्री के घर वालों ने उस पापी के दोष से धुन्धुमूक ब्राह्मण का सपरिवार नाश कर दिया; किन्तु वह दुष्ट ब्राह्मण कहीं जान बचाकर निकल भागा। उधर राज-दण्ड से शूद्री के परिवार को भी फाँसी दी गई। इस प्रकार दुष्ट दुष्टा उन दोनों के कुल का विनाश हो गया। ठीक कहा है:—

## "त्रिभिवेषींस्त्रिभिमीसोस्त्रिभिः पत्तेस्त्रिभिदिनैः । अत्युत्कटैः पापपुर्येरिहैव फलमस्तुते ॥"

उधर धुन्धुसूक का पुत्र भागते २ प्रारब्धवश बृहस्पित के आश्रम में पहुँचा।
देवगुरु बृहस्पित ने उसे ब्राह्मण जानकर पाशुपतव्रत, पंचाक्षर तथा षडक्षर
मंत्रों का उपदेश किया। उसने भी महामंत्र पाकर विधिवत् उन मंत्रों का दो २
लक्ष जप किया और एक वर्षतक पाशुपत व्रत में लगा रहा। अन्त में आयु

नोट—ॐ नमो नारायणाय—यह अष्टाचर मंत्र है। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय—यह द्वादशाचर मंत्र है। ॐ नमः शिवाय—यह शिवजी का षडचर मंत्र है। सब कार्यों को सिद्ध करने वाले इसी प्रकार के शिवतराय, मयस्कराय, नमस्ते शंकराय—इत्यादि मंत्रों से देवता लोग भी शिवजी का पूजन करते हैं। (१) नमः शिवाय, (२) नमस्ते शंकराय, (३) मयस्कराय, (४) कद्राय और (५) शिवतराय—ये पाँचो शिवजी के अमोघ महामंत्र हैं। इनके उच्चारण करने से श्रद्धा-हत्या आदि महापातक भी उसी च्रण जलकर भस्म हो जाते हैं। महापापी भी "नमः शिवाय" इस महामंत्र का उच्चारण करके निःसन्देह मुक्त हो जाता है।

समाप्त होने पर मृत्युवश वह यमलोक को गया । महराज यमने उसका बड़ा सत्कार किया श्रीर शूद्रों द्वारा मारे गये अपने पिता माता एवं स्त्रों को जो नरक-यातना मोग रहे थे—छुड़ाकर स्वर्ग में ले गया। भगवान् शंकर के पंचाक्षर मंत्र के जाप से तथा पाशुपत-त्रत के धारण करने से वह पितत ब्राह्मण भी अपने परिवार के साथ स्वर्ग गया। वहाँ ये सब शिवजी के गण में मिल कर आनन्द करने लगे। यह भगवान् शंकर के मंत्रों का प्रत्यक्ष फल है, जो पापी मजुष्यों को भी इतना ऊँचा पद दिलाने में समर्थ है। अन्यान्य मंत्रों से पंचाक्षर या पडक्षर मंत्र का फल कोटिगुना अधिक है। इसमें ज़रा भी सन्देह की बात नहीं है कि जो मजुष्य इस कथा का अवण-पठन करेगा अथवा उत्तम ब्राह्मणों को सुनावेगा, वह अवश्य ही शिवधाम को जायगा। लिखा भी है:—

यः पठेच्छ्रुणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान । स याति शिवधामं वै रुद्रजाप्यमनुत्तमम् ॥ ३६ ॥ ( ल्लिंगपुराण उत्तम० ८ स्र० )



## तिरासीवाँ रतन

शिवभक्त 'कलहंसजी'

मत्स्या श्रीर तापी नदी के संगम पर देवताश्रों से सेवित एक तीर्थ है। जहाँ ऋषियों का एक रमणीय श्राश्रम है। वहीं पर 'कलहंस' नामक एक प्रसिद्ध देविष रहते थे। वे सदा कन्द-मूल-फल तथा पयःपान द्वारा ही श्रपना जीवन निर्वाह करते हुए श्राशुतोष मगवान शंकर के ध्यान में लगे रहते थे। इस प्रकार एक पाँव पर खड़े २ योगसाधना द्वारा शिव-ध्यान करते हुए जब साढ़े दस हज़ार वर्ष बीत गये, तब उनकी इस घोर तपस्था से इन्द्र घबड़ा गये कि कहीं यह श्रपने तपोबल से हमारी 'श्रमरावती पुरी' न ले-लेवे—इस श्रमिश्राय से उन्होंने महिष कलहंस की परीक्षा करना चाहा।

% महापापैरिप स्पृष्टो देहान्ते यस्तु मां स्मरेत् । पंचान्तरीं वोच्चरित स मुक्तो नात्र संशयः ॥ १७॥ (शिवगीता १६ अध्यायः) इन्द्र ने ब्राह्मण का वेष धारण कर, कलहंस के ब्राश्रम में ब्रा, उनसे पूछा—'महात्मन्! किस लिये ब्राप इतनी घोर तपस्या कर रहे हैं?' ऋषि ने अपने योगबल से इन्द्र को पहचान कर कहा—'सुरराज! ब्राप व्याकुल न होचें, में ब्रापके पद के लिये यह तप नहीं कर रहा हूँ। में देवताओं के भी देवता अक-वत्सल भगवान् शिव की ब्राराधना कर रहा हूँ। ब्राप निश्चिन्त हो, ब्रपनी पुरी में जाकर राज्य करें।" यह सुनकर इन्द्र कुछ सहम तो गये; परन्तु किर बोले—"तपस्वन्! में ब्राप पर प्रसन्न हूं, मुक्तसे कुछ वर माँगकर तपस्या से विराम लीजिये।" तपस्वी ने कहा—'महाभाग! ब्राप से मुक्ते कुछ तात्पर्यं नहीं, ब्राप यथेष्ट चिचरिये। में जिनकी ब्राराधना कर रहा हूं, उनके ब्रातिरिक्त अन्य किसी से कुछ याचना क नहीं करूँगा। ब्राप व्यर्थ कष्ट न उठावें। अन्तमें उन्हें "मनोरथ–सिद्ध" का चरदान देकर इन्द्र अपने लोक को चले गये।

कुछ ही दिनों बाद भगवान् शंकर ने कलहंस की श्रपने में दूढ़ मक्ति । जानकर साक्षात् दर्शन दिया। महादेव जी के कोटि-कन्दर्प सुन्दर स्वक्रप को देखकर देवर्षि साष्टांग प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने छगेः—

"हारकाय नमस्तुभ्यमुमानाथ! नमोऽस्तु ते।

ब्रह्मविष्णुमहेशाय सर्वज्ञाय नमो नमः॥१॥

त्वया व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।

सद्यो जातस्तथाघोरस्तत्पुरुषाय नमो नमः॥२॥

उमाकान्ताद्धं देहाय श्रीकंठोरगभूषण्णम्।

श्रादिमध्यान्तक्षपाय कलिकाल! नमोऽस्तु ते॥३॥

श्रान्तगुणुरूपाय नागयक्षोपवीतिने।

नमः शिवाय शन्ताय श्रूलहस्त! नमोऽस्तु ते॥४॥

जिह्वाचापल्यमाचेन खेदितोऽसि मया प्रमो!

ब्रह्मविष्ण्वादिभिदेंवैर्यस्यान्तो नैव लम्यते॥५॥

भवसागरमग्नानां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।

श्रक्षानाज्ञानतो चापि श्रूलपाणे! क्षमस्व नः॥६॥

<sup>%—</sup>विनाऽहं त्र्यम्बकं याचे नान्यदेवादहो वरम् ॥ (रेवा खरड १४ अ०) †—ज्ञात्वा तस्य परां भक्तिं देवदेवो महेश्वरः । (रेवा खरड )

भगवान् शिवजी ने कलहंस की स्तुति सुनकर कहाः—है महाप्राञ्च । हे अनघ ! तुम्हारी स्तुति से मैं प्रसन्न हैं, तुम वर माँगो । तब कलहंस बोलेः—हे देवदेव ! जो आप प्रसन्न हों और यहां मुक्ते वर देने की इच्छा करते हों तो हे सुरेश्वर ! हे प्रमो ! ! "कलहंसेश्वर" नाम से आप यहां विराजिये, और हे महादेव ! यहाँ किये हुए होम दान, जप-तप आपके प्रसाद से अक्षय होवे । हे शिवजी ! जो मनुष्य पर-वश वा अपने वश हो करके यहां शरीर का परित्यात करे, वह इस तीर्थ के प्रभाव से आपके धाम को प्राप्त करे ।" तब महादेवजी बोछेः—'हे विप्र ! जिस २ काम की इच्छा करोगे, हमारे अनुग्रह से सब सिद्ध होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं।' यह कहकर महादेव जी कैलास को चछे गये। तब से यह कलहंस-तीर्थ शिवधाम को देनेवाला कहलाता है।

एतत्ते कथितं राजन् ! कलइंसस्य कीर्त्तनम् । पठनाच्छ्रवणाद्वापि न सीदन्ति कलौ जनाः ॥ (रेवाखण्ड १४ अ०)

इति ब्रह्मचि खण्ड।

# राग देश।

भज मन चन्द्रशेखर-चरण्॥ टेक ॥
सगुण-निर्गुण् रूप जाको नाम मंगल करन ॥
शेष सुमिरन करत जाको घरे रज सम घरन ।
सिद्ध औ सनकादि नारद निगम आगम वरन ॥
व्याध महा असाधु पामर अन्त लाग्यो मरन ।
शीत वस शिवनाम सुमिरत मिटी जियकी जरन ॥
इन्द्र चन्द्र कुबेर विधि हरि रहत जाकी शरन ।
कहत देविसहाय शिव भज मिटै आवागमन ॥ ७४ ॥
(शैव-मनोरञ्जनी)

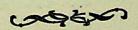


#### कत् स्वयम्सु मनु

विवस्वत् श्रादि चतुर्दश मन्वन्तरों में ''कतु" नामक एक स्वयम्यु मनु
ब्रह्माजी के मानस पुत्र थे। ये वड़े पराक्रमी तथा दीर्घजीवी थे। बहुत दिनों
तक इनको कोई सन्तित न हुई। इससे चिन्तित होकर ये पुत्र-कामना से
भगवान् शंकर की श्राराधना करने लगे। इस प्रकार शिव की समाधि में स्थित
कतु मनु ने तीन सौ धर्ष तक योग-तप किया। अन्त में भगवान् महेश्वर
ने प्रसन्न होकर इन्हें दर्शन दिया। उस समय वाममाग में श्रीपार्वती जी, सिर
पर श्रीगंगा जी तथा गोद में श्रीगरीश जी विराजमान थे। कण्टों में सपीं का
कर्ण्डहार एवं नाग-यज्ञोपवीत पहिने, ब्द्राक्ष तथा मस्म धारण किये, त्रिनेत्र,
पंचवदन महादेव जी विहँस रहे थे। मृगचर्म पर योगासन से स्थित नन्दिकेश्वर
तथा गणों से युक्त, इमरू-त्रिशूलधारी शंकरजी—जिनके ललाट में दितीया
के चन्द्रमा विभूषित हो रहे थे, नित्य श्रविनाशी सर्वान्तर्यामी सदाशिव भगवान्
के दर्शन से कृतकृत्य हुए मनु महाराज ने पुत्र होने का वरदान माँगा। शिवजी ने
'एवमस्तु' कहकर उन्हें "एक सहस्र पुत्र" होने का वरदान दिया। महाराज
'कतु' मनोऽभिल्पित वर पा, सन्तुष्ट होकर श्रपने स्थान को चले गये। शौर

''तस्य चोपददौ पुत्रान् सहस्रक्रतुसम्मितान् ।''

( म० भा० अनु । प० १४ अ० )



# पचासीवाँ रतन

#### महाराज मान्धाता

सूर्यवंश के इक्ष्वाकुवंश में 'युवनश्व' नामक एक प्रतापी राजा हुए। उन्होंने अनेक यक्ष किये, परन्तु कोई पुत्र न हुआ। इससे समस्त राज्य-मार अपने मन्त्रियों के अधिकार में सोंपकर, वे तपस्या करने के लिये वन में चले गये। वहाँ फलहारी बन, संयम-नियम से तप करते २ कुछ काछ बीत गया।

एक बार प्यास से व्याकुछ राजा इधर-उधर जल दूंढ़ रहे थे, कि इतने ही में किसी ऋषि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ इसी राजा के पुत्र-कामन से अभिमंत्रित जल से भरा हुआ एक कलश देखकर राजा ने शोधता से उसी जल को अन्जान में पीलिया और एकान्त में जाकर सो रहा। इसी बीच ऋषियों ने कलश को खाली देखकर पूछा कि जल किसने पीया? युव नश्च ने कहा—महात्मन्! मैंने प्यासे से घवड़ाकर शीघ्रता के कारण अपि लिया। क्षमा कीजिये। तब भागंच भगवान् वोले—मंत्रों द्वारा अभिमंत्रिय यह कलश-जल आपके पुत्र के निमित्त रखा गया है—जिसके पीने से आपश्च सन्तान होगी। हे राजेन्द्र! मैंने कठिन तपस्या द्वारा आपके पुत्र होने के लिया यह उपाय किया था। अतः आपने अञ्छा नहीं किया—जो जल पी लिया अस्तु, अब आपको पुत्र अवश्य होगा और वह बड़ा पराक्रमी, इन्द्र के समान अजेय तथा यशस्वी राजा होगा।

यथासमय राजा की वाई' कोंख फाड़कर दूसरे सुर्य के समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, और युवनश्व की मृत्यु भी न हुई। इन्द्रादि देवता उस बाल को देखने आये। देवताओं ने इन्द्र से पुछा:—''यह बालक क्या पीवेगा ? कों कि इसका जन्म माता के गर्भ से नहीं हुआ है।" तब इन्द्र बोले:—"मुमके पीवेगा।" पेसा कहकर इन्द्र ने बालक के मुँह में अपनी तर्जनी अँगुली डाव दी और बालक प्रसन्न हो, उसोको पीने लगा। उसी समय उसका नाम ''मान्धाता" हुआ। उसके स्मरण मात्र से दिव्य शस्त्र उपस्थित हुए। देवताओं के सिहत इन्द्र ने उनका अभिषेक किया। मान्धाता ने अपने जीवन में अने यह किये और इन्द्र के आधे राज्य को अपने यह बल से प्राप्त करके दस करों। वर्ष तक राज्य किया।

एक समय जब बारह वर्ष तक श्रनावृष्टि हुई, तब मान्धाता राजा ने मेर्ब

को वाणों से जीतकर वृष्टि करायी, श्रीर भगवान भूत-भावन की स्रृति की। राजा की स्तुति एवं सिविधि लिगणूजन से शंकर प्रभु प्रसन्न होकर वोले:—"हे सुव्रत! वरदान माँगो। तुम्हारे लिये कुछ भी श्रदेय नहीं हैं।" मान्धाता बोले:—'हे देवेश! श्राप मुक्त पर यदि प्रसन्न हैं श्रीर वर देना वाहते हैं, तो हे देवदेव! यह 'वैद्र्य्यं' नामक पर्वत मेरे (मान्धाता के) नाम से विख्यात हो श्रीर उसपर देवता लोग श्राकर निवास करें। श्राज से यहां पर दान, तप, पूजा-पाठ जो करें. वह शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करे श्रीर जो यहां प्राण् परित्याग करे, वह भो सद्गित पाकर शिवधाप (क्वर्ग) को जाय।" मान्धाता की प्रार्थना स्वीकार कर 'उँ कारेश्वर' भगवान्—"सर्वमेतन्नृपश्रेष्ठ! मत्प्रसादाद्ध-विध्यति" ऐसा कहकर श्रन्तर्धान हो गये।

"ॐकारमादिदेवञ्च ये वै ध्यायन्ति नित्यशः। न तेषां पुनराष्ट्रत्तिर्घीरे संसार-सागरे॥" (रेवाखएड २८ अ०)



# छियासीवाँ रतन

#### श्चयोध्यापति राजा 'ग्रजापाल'

प्राचीन समय में विख्यात अयोध्या नगरी का अधिपति 'अजापाल' नामक भूगल हुआ। वह राजा अपनी प्रजा के लिये वैसाही हितकारी था, जैसां पिता अपनी सन्तानके लिये होता है। उस धर्मात्मा राजा ने अपने पूर्वजों का राज्य पाकर अपने मन में विचार किया कि मुक्ते वेही कर्म करने चाहिये—जो मेरे श्रेष्ठ पुरुषों ने किया है, क्यों कि राजाओं का यह परम धर्म है कि सदैव प्रजाका प्रतिपालन करे और उनको सुखपूर्वक रखे। जो लोभी राजा प्रजाओं से 'कर' प्रहण करते हैं, उससे प्रजा के हृद्य में बड़ा क्षोप्त उत्पन्न होता है। राजा लोग अपने हाथो घोड़ा सेना की रक्षा करने के लिये स्वयं समर्थ नहीं होते, इसीलिये प्रजाओं से कर लेते हैं। अतः मुक्ते बिना हाथो घोड़ा और सेना के ही केवल तपस्या की शक्ति से राज्य करना चाहिये।

इस प्रकार राजा ने अपने मन में निश्चय कर, कुल-गुरु विसष्ठ जी को बुला, आदर से कहा:—''हे गुरुवर! किसी ऐसे तीर्थ का नाम बतलाइये - जहाँ जाने

से, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवता प्रसन्न हों। में अपने लिये नहीं; बिक समस्त संसार के लिये तपस्या करू गा। विसष्ठ जी बोले ि है राजन्! सब पापों का विनाश करनेवाला 'हाटकेश्वर-क्षेत्र' है। वहाँ अम्बिका देवी शोध ही प्रसन्न होती हैं। इसिलिये नियमपूर्वक उस देवी की आराधना करो। तत्पश्चात् राजा ने बहुत दिनों तक पुष्पादि से उस देवी की आराधना की। एक दिन पूजा में निरत राजा पर देवी प्रसन्न होकर बोली—"हे वत्स! में तुम्हारे पूजन से संतुष्ट हुई हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, मुक्ससे वर माँगो।" राजा ने कहा — "हे माता! मैंने अपनी प्रजा की हित-कामना के लिये इस व्रत को किया है. मेरी प्रसन्नता से सब प्राणी आनन्दित होवें। आकाश में गमन करने वाले, ज्ञान संयुक्त पेसे अस्त्र तथा मंत्रे को प्रदान करो—जिनसे पापाचारियों और रोगों को मैं दमन कर संकूं। मेरे राज्य में सब लोग सुखपूर्वक जीवन बितावें और रोग तथा शोक रहित होवें। हाथी, घोड़ा तथा रथों का संग्रह मैंनहीं करूंगा। क्योंकि इससे संसार के मतुष्यं को कष्ट होता है। देवी बोली—" है राजन्! आपने बड़ा प्रशंसनीय काम किया है जिसको न आज तक किसी ने किया और न करेगा। मैं तुम्हारी इच्छा के अनुक्प ही वरदान हुँगी।"

इसके बाद राजा ने जिन दिव्य अस्त्रों को माँगा था, वे वहां प्रकट हो गये। देवी के दिये प्रसाद को पा, राजा ने अपनी स्त्री और पुत्र दशरथ को छोड़कर, समस्त सम्पत्ति ब्राह्मणों को दान कर दी। पृथ्वी पर राजा की इस प्रकार दानशीलता की भूरि २ प्रशंसा होने छुगी। उस समय यदि कोई असाव धानतावश कुछ पाप करता था तो उसी क्षण उसको दण्ड दिया जाता था। राजा के उर से कोई पाप नहीं करने पाता था। इसिलये यमपुरी भी स्त्री हो गयी। तब यमराज ने जाकर ब्रह्मा से कहा कि आपने मुक्ते पापी मनुष्णे को दण्ड देने का अधिकार दिया था; परन्तु राजा अजापाल ने देवी के प्रसार से मुक्ते इस अधिकार दिया था; परन्तु राजा अजापाल ने देवी के प्रसार से मुक्ते इस अधिकार से विज्ञत कर दिया है। यह सुनकर ब्रह्मा जी ने समीप वेते हुए शिवजी की ओर देखा। महादेवजी ने कहा कि, सदाचार पर चलवे वाले राजा को किस प्रकार रोका जायगा। हमें वही कार्य करना-चाहिये जिसते राजा प्रसन्न होवे और उसका धर्म दूषित न हो। उसके बाद शिवजी ने यमराज से कहा कि राजा का कितना आयुर्वल शेष है ? यमराज ने कहा कि, हे सुरश्रेष्ठ उसके आयुर्वल में केवल ५ पाँच हजार वर्ष व्यतीत हुए हैं। अभी पचपन हजा वर्ष आयुर्वल शेष है। इसलिये उसके विनाश का शीव कोई उपाय की जिये।

यमराज के जाने पर शिवजी क्याघ्र का रूप धारण कर उस राजा के यहाँ गये। राजा उस समय पूजा-पाठ में लीन था। क्याघ्र रूप में शंकर ने राजा की बकरियों को मक्षण कर लिया। अपनी वकरियों का इसप्रकार विनाश होते देख, राजा ने तीखे वाण चलाये—जिन्हें शंकर जी ने अपने मुख में प्रहण कर लिया। उसके वाद राजा ने शिवजी से द्वन्द्व युद्ध किया। शिवजी के अंग-स्पर्श से राजा का शरीर पवित्र हो गया और राजा पर प्रसन्न होकर शिवजी ने क्याघ्र शरीर को छोड़कर चन्द्रमाल-विभृति-विभृषित अपने दिव्य शरीर को धारण किया।

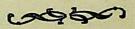
मुण्डमालाधरान्दिच्यां सखद्वाङ्गसपन्नगाम् । तान्द्रष्ट्वा स महीपालस्त्रभाट्येः प्रणतस्ततः ॥ ७४ ॥

( नागर खं ० ६३ अ०)

खट्वांग सहित सपीं की जनेऊ और मुण्डमाला को घारण किये उस शरीर का दर्शन कर राजा ने प्रणाम किया और आनन्द के आँसुओं से गद्दाद वाणी बोळे—'हे व्यापक देव! अज्ञानता में किये हुए मेरे अपराघों को क्षमा कीजिये।' शिवजी ने कहा—"हे राजन्! जिस भाँति तुमने राज्य किया और प्रजाओं का पालन किया, उस प्रकार किसी ने नहीं किया है और न करेगा। इसिलिये हे नृपसत्तम! धर्म समेत इसी शरीर से पातालपुरी में जाओ। क्योंकि तुम्हारा कर्म देवताओं के विषद्ध है। इससे तुम्हें मृत्युलोक में न रहना चाहिये। राजा बोळे—"देव! में अयोध्यापुरी में जाकर अपने पुत्र दशरथ को राजगद्दी सौंप एवं मंत्रियों को अच्छी प्रकार से समक्ता-बुक्ताकर आपके कथनानुसार पाताल में ही रहूँगा। इसके बाद महाराज अजापाल चैसाही करके अजर-अमर होकर आज तक भगवान शंकर की सन्निधि में हैं और जबतक सूर्य्य-चन्द्रमा पृथ्वी पर रहेंगे—वे वहीं निवास करेंगे। देखिये:—

> तेनैव नरदेहेन स्वकलत्रसमन्वितः । अद्यापि तिष्ठते तत्र जरामरणवर्जितः ॥ ८३॥ अद्यानश्च तन्देवम्पाताले हाटकेश्वरम् । एवं तत्र सम्रद्भूता सा देवी या महेश्वरी॥६४॥

( नागर खंड ६३ अ० )



# सत्तासीवाँ रतन

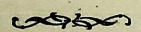
### महाराज दशर्थजी

सूर्यवंश के भूषण स्वरूप महाराज दशाध के जब तोन पन बीत चुके श्रीर राज्य का उत्तराधिकारी कोई पुत्र नहीं उत्पन्न हुआ, तब उन्होंने पुत्र के निमित्त प्रभास-क्षेत्र में जाकर मगवान् शंकर का ध्यान-पूजन करते हुए बहुत दिनों तक कठिन तप किया। वहाँ पर "दशरथेश्वर" नामक लिंग की स्थापना करके ने नित्य उनकी स्तुति करने लगे। थोड़े दिनों में भगवान् शंकर प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष हुए श्रीर बोले—"राजन्! मैं तुमपर श्रत्यन्त प्रसन्न हूँ, मनोवांछित वरदान माँगो ?"महाराज ने विनयपूर्वक कहा—"हे सुरेश्वर! मैं केवल श्रपने राज्य के उत्तराधिकारी पुत्र के न होने से अधिक दुःखी हूँ। इसलिये श्राप यदि प्रसन्न हैं तो मुक्ते यशस्वी पुत्र प्रदान करें। भगवान् ने कहा—"हे महामाग! शीघ्र हो नै लोक्पविजयी मर्यादापुरुषात्तम श्रीराम का श्रवतार तुम्हारे घर होगा। श्रतः तुम श्रपनी राजधानी में चले जाश्रो।"

महाराज दशरथ जी श्रयोध्यापुरी में श्राकर फिर राज-काज सँभाले लगे। यथासमय उनकी राजमहिषी ने श्रीराम को उत्पन्न किया। जिनका यशोगान-श्रादिकिय महिष वाल्मीकि ने किया है। जिस शिवलिंग के प्रभाव से राजा ने राम के समान पुत्र पाया, उसके दर्शन-पूजन से श्राज भी मजुष्य वैसा ही फल पाता है। लिखा भी है:—

"तेन लिङ्गपभावेण प्राप्तं राजा महद्यशः। कार्तिक्यां कार्तिके मासे विधिना यस्तमचियेत्।। दीपपूजोपहारेण यशस्वी सोऽभिजायते॥ ७॥

( प्रभास खर्ड १६४ अ० )



### अहासीवाँ रत्न

### राजा इन्द्रसेन

सत्ययुग में 'इन्द्रसेन' नामक एक प्रतापी राजा हुए। वे प्रतिष्ठापुर के ब्रिधिपति तथा धोर-गम्भीर एवं शिकार खेलने में सिद्धहस्त थे। बिना शिकार के उनसे एक दिन भी न रहा जाता। उनके प्रताप से त्रिभुवन कांपता था। परन्तु एक बड़ा भारी दोष उनमें यह था कि वे श्रपनी इन्द्रियों के वश में होकर प्रजा-पालन में उदासीनता रखते थे। अपने सुख तथा मनमाने कार्यों के लिये दूसरे का हिताऽहित कभी न सोचते थे।

इनके आखेट का एक दल-सा था। जो प्रतिदिन इनके पीछे आइ।पालन
में तत्पर रहा करता था। जब ये शिकार को जंगल में जाते तो "आहरस्व"—
"प्रहरस्व" का विशेष उच्चारण करते थे। इस प्रकार बहुत दिनों तक इन्होंने
राजसुख भोगा। मृत्यु के बाद जब यमदूतों द्वारा वे यमलोक पहुँचाये गये और
इनके कर्मों के परिणाम सुनाये गये, तब निर्णायक यमराज ने राजा इन्द्रसेन से
विहँसकर कहा—महाराज! आप यहाँ कैसे आ गये? आप तो पुर्यवान् हरभक्त हैं। अतः आप शिवलोक में जावें।

यमदेव का वचन सुनकर राजा ने कहा—भगवन् । मैंने अपने जीवन में कोई उत्तम काम नहीं किया; प्रत्युत निरन्तर शिकार खेलकर पशु-वध का ही पाप किया है। भला, मैं शिवभक्ति क्या जानूँ ? कैसे मुक्ते आप स्वर्ग मेज रहे हैं ? तब यमराज ने कहा—'हे राजन् ! आखेट के समय आप सदैव "आहरस्व' "प्रहरस्व" का उच्चारण करते थे। उस समय "हर" (शिववाचक) शब्द के उच्चारण से भगवान् शिवजी अपना नाम सुनकर प्रसन्न होते थे। उसी नाम के प्रभाव से आपके सभी पाप-पुंज तृण के समान जलकर भस्म हो गये। अब पवित्र हो गये हो। अतः सीधे शिवधाम को जाओ।

राजा इन्द्रसेन और यमराज में बातें हो रहीं थीं कि इतने ही में शिवजी के नाणदूत वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर महाराज यम बहुत प्रसन्न हुए और शिवजी की भाँति उनका भो स्वागत किया। आतिथ्य-सत्कार से सन्तुष्ट शिव-गण राजा इन्द्रसेन को विमानपर बैठाकर शिवजी की शरण में छे गये। भगवान् शंकर ने महाराज इन्द्रसेन को बड़े आदर-सत्कार से अपने समीप बैठाया और उन्हें भी अपने गण में मिला लिया। तब से ये शिव के पार्षद सुण्ड के मित्र

"वण्ड" नाम से विख्यात हुए । इस प्रकार महाराज इन्द्रसेन शिवजी के नामोच्चारण मात्र से ही मनोवाँच्छित फल पाकर मुक्त हो गये।

"महेशानापरो देवो दृश्यते अवनत्रये। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजनीयः सदा शिवः॥"



### नवासीवाँ रतन

### शिवभक्त राजा कामरूपेश्वरजी

कामक देश में "कामक पेशवर" नामक एक प्रतापी राजा हुए, ये अनन्य शिव-भक्त थे। इनका समस्त समय शिवजी के पार्थिव पूजन में ही व्यतीत होता था। एक बार कामक देश में "भीम" नामक एक भयंकर राक्षस ने ऋषि मुनियों को नाना प्रकार की पीड़ा पहुँचाकर अत्यन्त चिन्तित कर दिया। यज्ञ-व्रत, पूजा-पाठ में विद्न डालने लगा। यहाँ तक कि सब देवताओं और ऋषियों को तंग करके वहाँ से निकाल दिया। और इधर-उधर तपस्वियों को ढूंढ़ने लगा।

प्क दिन महाराज कामकपेश्वर शिवजी के ध्यान में मग्न हो, उनका
पूजन कर रहे थे, इसी बीच वह राक्षस वहाँ पहुँचा और उस मक राजा को मारो
के लिये तलवार खींचकर उनके निकट खड़ा हो गया। राजा से मय दिखाते
हुए पूछा—"तुम कीन हो ? इस समय क्या कर रहे हो ? सत्य २ कह दो, नहीं
तो आज में तुक्ते सपरिवार मार डालूंगा।" राक्षस के पेसे नृशंस पवं कठोर
शब्दों को सुनकर राजा कुछ भयमीत तो हुए, पर धैर्य धारण करके मन में सोचने
लगे कि जिस शंकर जी की पार्थिवपूजा में प्रतिदिन करता हुँ, जिसके बल से
इन्द्रादि देवता राज-सुखोपमोग करते हैं और जिसके आधीन समस्त संसार के
चरावर जीव हैं, वही परमेश्वर इस पार्थिविंछग में भी विद्यमान हैं, तो क्या ये
संकट पड़ने पर मेरी सहायता न करेंगे ? इस प्रकार धैर्य धारण कर, राजा ने
महादेव जीसे प्रार्थनाकी, कि हे उमेश ! में आपका मक हूँ और आपकी ही शरण
में आया हूँ। आप सर्वान्तर्यामी हैं। जो इच्छा हो, सो कीजिये। पेसा सोचकर
उस अधम राक्षस का तिरस्कार करते हुए राजा बोले:—'ऐ राक्षसेश्वर ! मक्त-

स्वमक्तपरिपालकम् ) महाराज कामक्रपेश्वर के इस वचन को सुनकर राक्षसेन्द्र भीम क्रोध से लाल होकर गर्व के सिहत बोलाः—तुम्हारा शिव-शंकर मेरा जाना हुआ है। वह क्या करेगा ? जिसको मेरे चाचा रावण ने वश में कर रखा था, उसी शिव का तुम भजन कर रहे हो। इस काम को छोड़ दो नहीं तो मैं तुक्ते भयंकर दण्ड दूँगा और तुम्हारे शिव का बल भी देख लूंगा।

राजा ने कहा—चाहे तुम इसके लिये जो चाहो, सो करो। परन्तु जब तक मेरे कएठ में प्राण रहेगा, तब तक में न शिवपूजन छोडूंगा, न उनका ध्यान सजन छोडूंगा। राजा के पेसे निर्भीक बचन को खुनकर भीमाखुर ने हँसकर कहा—तुम बड़े मूर्ख हो, उस भीखमंगे, नङ्गे, विषधर जीवों के संग रहने वाळे प्रहाड़ी शंकर के किङ्कर बने हो। यदि तुम अब से भी यह काम नहीं छोड़ते हो तो लो, मुक्तसे युद्ध करो और मेरे तीखे वाणों के शिकार बनो, अथवा अपने संरक्षकों को बुलाओ। देखें, तुम्हारा वह शंकर कैसे सहायता करता है। पेसा कहकर भीमाखुर अपनी तलवार की धार का पार्थिविलग पर ज्योंही वार किया, त्योंही उस लिङ्ग से साक्षात् शंकर जी प्रगट हो गये। उस विकराल छद्र के रौद्र कप की देखकर उसकी सेना काँप उठी। शिव जी ने अपना त्रिशूल तानकर उस शक्ष्म से कहा कि देखो, मैं अपने भक्तों की रक्षा कैसे करता हूं। भक्तों को सुख देने वाले एवं शत्रुओं (राक्षसों) को शूल देने वाले मेरे इस त्रिशूल को देखो और अब अपने बचने का उपाय सोचो।

इस प्रकार देखते-देखते भगवान् शंकर ने भीमासुर का बध कर डास्त्र श्र राक्षसों का संहार होते देखकर ऋषि-मुनि प्रसन्न हुए, देव गन्धवों ने आकाश से पुष्पों की बृष्टि की। अन्त में भगवान् ने राजा से कहा—हे भक्तशिरोमणे । अब तुम क्या चाहते हो, चर माँगो। राजा ने हाथ जोड़कर कहा—भगवन् । सुके अब कुछ नहीं चाहिये। आपने इस राक्षस का वध करके तीनों लोकों को आनिन्द्रत किया। देवता-मुनियों ने भी यही कहकर प्रार्थना की, कि संसार के कल्याण के कारण आप यहाँ सदा निवास करें और भीम-शंकर जाम से प्रसिद्ध हो। यह प्रार्थना सुनकर भगवान् शंकर जी ने वहाँ निवास किया।

इत्येवं पार्थितरशम्भुर्लोकानां हितकारकः । तत्रैव स्थितवान्त्रीत्या स्वतन्त्रो भक्तवत्सलः ॥ ५४ ॥ (शि० पु० २१ श्र०)

### नब्बेवाँ रतन

### एक राजकुमार बालक

. विदर्भ नगर में 'सत्यरथ' नामक एक शैव राजा धर्मपूर्वक राज्य का रहे थे। वे वड़े धर्मात्मा, सत्यवादी तथा पराक्रमी राजा थे। एक दिन महाराज सत्यरथ शिवजी का पूजन कर रहे थे, उसी समय ससैन्य शास्य राजा वहाँ आकर युद्ध करने को उद्यत हो गया। दोनों में द्वन्द्व युद्ध हुआ। महाराज सत्य रथ हार गये और शत्रुद्वारा मारे गये। सत्यरथ की सेना भयभीत होकर भाग गई। मंत्री लोग इधर उधर जान लेकर छिए गये। उस संकटापन्न समय में महाराज सत्यरथ की गर्भवती महारानी वेचारी शोकसन्तप्तमना होकर शत्रुश्रों के भय से रातोरात अन्तःपुर से अकेली भागकर किसी घोर वन में जा पहुंची वह मन में श्री शंकर जी का ध्यान करती हुई किसी प्रकार रात बिता कर प्रात काल होतेही एक सुन्दर सरोवर के तटपर पहुंची। वहाँ छायादार वृक्ष-लताश्रं के प्राकृतिक कुञ्ज में निवास करती हुई रानी के कुछ समय किसी प्रकार बीत गये। यथाकाल उसके गर्भ से एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्त हुआ। उस समय उसके भाग्यवान् होने के अनेक लक्षण दीख पड़े थे। परन्तु पुत्रजन्म के थोड़ी देर बाह दैववश रानी वालक को वहीं छोड़कर जल पीने की इच्छा से उस सरोवर में गयी । ड्योंही जल पीने लगी, त्योंही कालद्वपी मगर ने उसे पकड़ लिया और सर्वदा के लिये उस नवजात शिशु को अनाथ कर दिया।

इधर वह वालक पृथ्वी पर पड़ा २ रो रहा था। उस निर्जन वन में उस वालक का कोई दूसरा सहायक न था। हाय, "देवो दुर्वलघातकः"। इस बालक का ठर्न सुन कर उस वन के पशु-पक्षो भी मन ही मन प्रारब्ध को धिक्कार रहे थे। इसी बीच अन्तर्यामी, द्यालु भगवःन् शंकरजी की प्रेरणा हे वहाँ एक मिश्लुकी अपने एक वर्ष के जन्मे हुए बालक को लिये हुई आ पहुंची। इस बालक को अनाथ एवं नवजात जानकर मारे करुणा के वह चिन्ता कर्त लगी और मन ही मन अपने मन्द भाग्य को धिक्कारती हुई उस तेजस्वी बालक को उठाने की चेष्टा करने लगी। वह सोचती थी, कि मैं स्वयं भिक्षा मांगकर को उठाने की चेष्टा करने लगी। वह सोचती थी, कि मैं स्वयं भिक्षा मांगकर किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह कर पाती हूँ। तिस पर भी मेरा एक वर्ष का बच्चा भी है। अब इस अनाथ बालक का पालन कैसे करूँगी, अथवा इसे अकेला छोड़ने पर भी पातक लगता है। क्या कर्ष ? धर्म का निर्वाह कैसे हो।

देती परिस्थिति में—जब इसका नाल-छेदन भी नहीं हुम्रा—जातकर्म संस्कार द्वारा इसके पालन में बड़ा पुण्य होगा। परन्तु मेरी जैसी दोना दुर्भगा का यह काम नहीं। ऐसे तेजस्वी, राजसदन में पालने योग्य बालक की रक्षा में कैसे कर सकूंगी—इत्यादि नाना प्रकार की कल्पनाएँ उसके हृद्य को डाँवाडोल कर रही थीं। उसी समय श्रत्यन्त, द्यालु, दीनों पर द्या करने वाले शरणागत- वत्सल भगवान् शिवजो एक भिक्षुक के वेष में वहाँ ग्रा पहुँचे श्रीर हँसते हुए भिक्षुकी से बोले—ज्ञाह्मणि! तुम अपने मन में किसी प्रकार का सन्देह न करो श्रीर मानसिक कल्पनाश्रों को छोड़कर इस वालकको श्रपने साथ ले जाश्रो। इसका लालन—पालन भी श्रपने पुत्र के समान करो। इसी वालक द्वारा तुम्हारा श्रन्त में कल्याण होगा।

उस भिक्षुक-वेषधारी शिवजी के वचन पर श्रद्धा पर्व विश्वास करके उस ब्राह्मणी ने उस लड़के को अपने संग कर लिया। श्रीर विनय के साथ उनसे पूछा कि हे भगवन्! श्राप कौन हैं ? श्रीर यह बालक कौन है ? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर से मुभे सन्तुष्ट करें, क्योंकि मेरी समभ में श्राप कोई श्रसाधारण देवता भालूम होते हैं। यदि मुभपर आपकी इतनी द्या है तो बताइये ? श्रापके भक्त की यह दशा क्यों है ? कहणासागर भगवान् ने उस स्त्री को श्रपना वह शुद्ध-बुद्ध-सिव्वदानन्द जगदानन्दकारक स्वरूप दिखाया—जिसके लिये श्रविगण श्रनेक जन्म तप करते हैं, तौ भी नहीं पाते। पेसे श्रद्धत-श्रगम श्रगोचर, सत्य तथा सुन्दर (सत्यं परं सुन्दरम्) स्वरूप को देखकर वह इतार्थ हुई श्रीर श्रपने जन्म को सफल समभने लगी।

भगवान् बोळे—हे ब्राह्मणपित ! इस वालक का संक्षिप्त परिचय इस
प्रकार है। इसके पिता विदर्भ-नरेश शत्रुश्रों द्वारा युद्ध में मारा गया और माता
भी इसे प्रसव करके अभी स्वर्ग को चळी गई। अब यह तेजस्वी बाळक
अकेला है। अतः ले-जाकर इसका तुम पाळन-पोषण करो। इसके द्वारा तुम्हारी
विमल कीर्त्त संसार में अचल हो जायगी और अन्त में तुम सपरिवार परम पद
को पाबोगी।

इतने ही से उस ब्राह्मणी को तृति न हुई। उसने फिर पूछा—हे महाभाग!
भला श्रापके भक्तों की यह दशा क्यों ? यह बालक माता-पिता तथा बन्धु-रहित
क्यों हुआ ? मुक्त निर्धन का पुत्र क्यों कहळावे ? कैसे इसका पालन मुक्त दीन
ब्राह्मणी से हो सकेगा ? मैं इन दोनों का—विशेषतः इस तेजस्वी बाळक के अजु-

कुल सामग्री का कैसे प्रबन्ध कर सकूंगी? तब मिश्चक रूपधारी महापुरुष है विहैते हुए फिर इस प्रकार कहा-हे ब्राह्मणी! तुम व्याकुल न होवो। तुम्हारी स्व इच्छाएँ पूर्ण होंगी। अच्छा, अब इस बालक का संक्षिप्त चरित सुनी:-

'इस बालक का पिता (सत्यरथ) पूर्वजन्म में पाएडुराज हुआ, वह अपनित्या शैच था। एक बार वह शिवरात्रि के दिन त्रयोदशीव्रत रहकर शिव जो की पूजा में मग्न था। इसी बीच नगर में एक वड़ा भयंकर शब्द हुआ। उसे सुन कर राजा पूजा-छोड़कर शत्रु की शंका से बाहर चला गया। वहाँ शत्रु को उपद्रव करने के निमित्त श्राये हुए जानकर राजा ने उसका सिर काट लिया और फिर उस अपवित्र राजा ने शिव-पूजन किये बिना ही रात्रि में भोजन कर लिया। इसी पाप के कारण तथा इष्ट-देव के तिरस्कार करने के अपराध से वह इस प्रकार इस जन्म में शत्रुद्वारा मारा गया। इसी प्रकार इसकी माता ने भी पूर्व जन्म में अपनी सौति को छल करके मारा था, इस पाप से उसे मगर ने बा लिया। यह लड़के ने भी उस जन्म में शिवजीकी पूजा का कुछ व्यतिक्रम किया है इसलिये यह इस जन्म में पेश्वर्थ्यरहित मातृ-िवतु-विहीन होकर कष्ट पा रहा है। हें ब्राह्मणी ! यह तुम्हारा जो श्रपना पुत्र है। पूर्व जन्म में ब्राह्मण था श्रीर नित्य प्रतिप्रह लेकर अपना जीवन विताया करता था। इसने यज्ञ-व्रत-श्रनुष्ठानाहि तथा दान-पुर्य कुछ भी अपने जीवनकाल में नहीं किया । इस कारग इस समय व्यक्ति हुआ है। इस प्रकार सब कथा सुना तथा उस ब्राह्मणी को अपनी अचलभक्ति देकर भगवान् वहीं अन्तर्थान हो गये । श्रीर वह ब्राह्मणी श्रानन्दपूर्वक दोनी बालकी को लेकर "चक्र" नामक प्राम में रहने तथा उनका पालन-पोषण करने लगी।

यथाकाल शाण्डिल्यमुनि के द्वारा उन दोनों का उपनयन संस्कार होकर सव कलाओं की शिक्षा मिली। अन्त में वे दोनों भगवान शंकर की असीम कृपा से अपने जीवन में राजसुखोपभोग करते हुए बड़ा सुयश कमाये और मरते पर सपरिवार शिवलोक गये। जो इस पवित्र चरित्र को नित्य सावः धान होकर खुनता, पढ़ता श्रीर दूसरे को खुनाता है, वह इस लोक (मृत्युलोक) में सुखपूर्वक श्रानन्द करता हुश्रा कैलास में जाकर परम श्रानन्द (मोक्ष ) की

प्राप्त करता है।

य प्तच्छृणुयानित्यं श्रावयेद्वा समाहितः। स अक्ता निखिलान् कामान् चान्ते शम्भुपुरं त्रजेत् ॥ ( ब्रह्मोत्तर खरड )

### एकानबेवाँ रतन

### वैष्णव-शिरोमणि 'भीष्म-पितामह'

भीष्म पितामह महाराज शान्तनु के ज्येष्ठ पुत्र थे। वे पिततपावनी गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। भीषण (किंठन) प्रतिक्षा के पालन करने के कारण उनका नाम "भीष्म" पड़ गया। महाभारत के अन्त में जब भीष्म पितामह शर्म्या पर पड़े हुए थे, तब भगवान् शंकर को जानने की श्च्छा रखनेवाले धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा—हे भीष्मपितामह ! आपने जगत्पित महेश्वर के माहात्स्य छुने हैं। अतः देवों के भी देव ईश शम्भु के विषय में मुकसे कहिये।

भीष्म पितामह ने कहा-'हे युधिष्ठिर ! वह ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है: परन्तु द्रुष्टिगोचर नहीं होता । ऐसे श्रव्यक्त-नित्य-निर्विकार शिवजी के गुर्खों के वर्णन करने का मुक्तमें शक्ति नहीं है। जो विराट् (ब्रह्मा), सूत्रातमा (विष्णु) श्रीर प्राज्ञ (इन्द्र ) के स्नष्टा (उपादान कारण रूप) हैं, श्रीर जो प्रभु (नियन्ता) हैं। ब्रह्मा से छेकर विशाच तक जिनकी उवासना करते हैं, प्रकृति तथा प्रकृति के भोका पुरुष से भी जो परे हैं, योग जानने वाले तस्ववेत्रा ऋषि मुनि जिनका चिन्तन करते हैं, जो श्रक्षर (श्रपरिणामी) तथा परब्रह्म हैं। जो रज्जु में सर्प तथा सीप में रजत के समान भासने पर भी अनिर्वचनीय हैं। अर्थात् जो सत् है, न असत् है। जो प्रकृति और पुरुष से परे है। अर्थात् प्रकृति पुरुष को द्वाकर जो स्वयं ब्रह्माएड की रचना करता है। ऐसे प्रभु परमेश्वर महादेव के गुणों के वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ? अतः हे पुत्र ! शंख-चक्रगदाधारी नारा-यण भगवान् के श्रतिरिक्त मुभ सरीखा पुरुष उन परमेश्वर शंकर के गुणों को किस प्रकार जान सकता है ? क्योंकि भगवान् नारायण ज्ञानी हैं, विष्णु (व्या-पक ) हैं, दुर्जय हैं श्रीर वे दिव्य दृष्टि से महादेवजी का दर्शन किया करते हैं। जब बद्रिकाश्रम में श्रोकृष्ण जी ने भगवान् शंकर को प्रसन्न किया, तब शिव-भक्ति के प्रभाव से पुरुषोत्तम कृष्ण ने समस्त संसार को व्याप्तकर लिया श्रौर सब लोकों

क्ष को हि शक्तो भवं ज्ञातुं मद्विधः परमेश्वरम्। ऋते नारायणात्पुत्र शंखचक्रगदाधरात् ॥ ८॥ ( म० भा० श्रद्ध० प० १३ श्र०)

के चाहने योग्य भोग्य वस्तु से भी अधिक प्रिय (अन्तर्यामी) पद पाया। तव भीका पितामह ने शंकर की महिमा जाननेवाले श्रीकृष्ण जीकी प्रार्थना की कि है देव! है विष्णो! धर्मराज के प्रश्नों का आपही उत्तर दीजिये, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं। तब श्रीकृष्ण जी ने कहा—हे भीका पितामह! जिस भगवान् शंकर के गुणों को ब्रह्मादि देवता भी नहीं जान सकते, उनके गुणों को भला मनुष्य कैसे जान सकता है? महात्मा शंकर के गुणों को किसी प्रकार यथाशकि मैं कहूँगा। पेसा कहकर पवित्रता से आचमन करके वोले—िक मैंने पहिले 'साम्बर्धनामक पुत्र को उत्पन्न करने के लिये जब कठिन तप किया था, तब प्रत्यक्ष में भगवान् शंकर ने दर्शन दिया था।

ऐश्वर्य यादृशं तस्य जगद्योनेर्महात्मनः। तदायं दृष्ट्वान् सान्नात् पुत्रार्थे इरिरच्युतः॥ १४॥ ( महा० श्रनु० १३ )



# बानबेवाँ रत्न

### शिवभक्त 'सुधर्मा' और 'तारक'

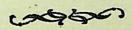
काश्मीर में 'मद्रसेन' नाम का एक श्रेष्ठ राजा हुआ। जिसके पुत्र का नाम 'सुधर्मा' श्रीर मन्त्री का नाम 'तारक' था। राजकुमार तथा मन्त्रिकुमार में बड़ा स्नेह था। वे दोनों एक से एक सुन्दर, सुशील तथा गुणी थे। पढ़ने- छिखने, खेलने-कूदने एवं खाने-पीने में सर्वत्र उन दोनों का सहयोग था। वे श्रीव थे, श्रतः दोनों को रुद्राक्ष की माला श्रीर भस्म से बड़ा प्रेम था। स्वर्ण या रत्न के हार का परित्याग करके वे दोनों रुद्राक्ष की माला धारण करते थे।

एक बार महिषं पराशर जी भद्रसेन राजा की राजधानी में पहुँचे। उस समय राजा ने इनका विधिवत् स्वागत करके ऊँचे आसन पर बैटाया और विनयपूर्वक निवेदन किया कि, हे मुनिवर! हमारे राजकुमार और मिन्त्रकुमार दोनों नित्य भस्म तथा रुद्राक्ष की माला आद्रपूर्वक धारण करते हैं, परन्तु आग्रह करने पर भी (किसी ने इनको सिखलाया भी नहीं) रत्नों की माला नहीं धारण करते। यह स्वाभाविक प्रवृत्ति न जाने कैसे हो गयी। आप त्रिकालझ हैं इसिलिये छपा करके मेरी यह जिज्ञासा पूरी कीजिये। यह सुनकर पराशरमुनि होहे:- महाराज ! आपके मन्त्रिपुत्र तथा राजकुमार के पूर्वजन्म का वृत्तान्त जैसा आश्चर्य-जनक है, वैसा सुनिये।

"इसके पूर्वकाल में निन्दगाम में 'महानन्दा' नाम की एक प्रसिद्ध वेश्या रहती थी—जिसकी सजावट की सामग्रियों की कोई संख्या नहीं थी। वह सदा रत-जिटत विविध भूषणों से विभूषित रहा करती और सिद्ध महातमाओं के मन को भी सहज ही में मोह लिया करती थी। साथ ही वह शिवकी अनन्य सेविका (भक्त) भी थी, विना पूजन किये अन्न प्रहण नहीं करती। वह शिवभिक्त में उन्मत्त रहकर वानर और मुर्गा को नचाया करती थी। शायद वह इस काम में नृत्यकला-प्रवर्चक नटराज शिवजी को प्रसन्नता के लिये ही ऐसा करती हो! वानर और मुर्गा को भी रुद्धाक्ष पहनाती थी। वानर के सभी भूषण रुद्धाक्ष के बने हुए और मुर्गा के पैरां तथा गले में भी उसी की मनिया शोभा दे रही थी। हे राजन ! वही बानर इस जन्म में तुम्हारा पुत्र और वह मुर्गा मंत्रिपुत्र होकर आया हुआ है। इसीलिये उनका वह संस्कार शरीरान्तर होने पर भी कुछ २ बना हुआ है। अब वे इस जन्म के बाद पुनः संसार में न आवेंगे। मेरे रुद्धाक्ष के घारण करने एवं पूजा-ध्यान के प्रभाव से वे दोनों आवागमन से रहित होकर शिव जी के उत्तम धाम कैलासपुरी में जायेंगे।"

पेसा सुनकर राजा प्रसन्न हुए श्रीर स्वयं भी उन्हीं परमेश्वर महादेव का मजन करने लगे। श्रन्त में उनके सभी बन्धु-बान्धव शिवधाम में जाकर मुक्त हो गये।

"पूर्वाऽभ्यासेन रुद्र ज्ञान द्धाते शुद्धमानसौ । अस्मिञ्जगति तं लोकं शिवं सम्पूच्य यास्यतः ॥" ( ब्रह्मो० खं० )



# तिरानवेवाँ रत्न

# विरक्त महाराज 'भर्तृहरि'

श्राज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व, मालवा प्रान्त (राजपूताना) के जगिद्धख्यात उज्जैन नगर में महाराज 'भर्नु हरि' राज करते थे। ये बड़े धर्मात्मा, नीति-निपुण तथा न्याय-परायण विद्वान् पुरुष थे। प्रजा-वत्सल महाराज भर्नु हिर श्रपनी प्रजा को पुत्र के समान मानते थे। उनके राज्य में सब श्रपने २

श्रधिकार में लगे रहते थे। उनके समय में चोर-डाकू या बदमाशों का चास नहीं था। ऐतिहासिक दृष्टि से बौद्ध-धर्म का प्रचार उस समय जोरों पर था। ब्राह्मणः धर्म एवं यज्ञादि कृत्यों की अधोगित थी।

उस बौद्धकालीन युग में भी महाराज की खूब चलती थी। देवी देवताओं पर विशेष विश्वास रखने वाली इनकी प्रजाओं में बौद्धमतानुयायियों की दाल न गली; प्रत्युत स्थान २ में विद्धान् ब्राह्मणों द्वारा शिवार्चन होता था स्वयं महाराज भी प्रेम सहित विधिवत् पार्थिव-पूजन किया करते थे। श्रापने कितने बौद्धों को शैव सनातनो बनाया। सर्वगुण सम्पन्न होते हुए भी राजा मर्त्व हिर में एक भारी दोष यह था कि वे पिंगला नामक रानी में इनका श्रधिक प्रेम था। ये इसमें विषयासक हो गये थे। वास्तव में कामिनियों के संसर्ग से बुद्धिमान् पुरुष भी सत्यथ से विचलित हो जाता है। किसी किन्न ने ठोक कहा है:—

"अविनाशी विच धार तिन; कुल कंचन अरु नार । जो कोई इनतें बचै; सोई उतरे पार ।।

चन्द्रमुखी, सिंह की कटिवाली, इस्ती के समान मन्थर गतिवाली, स्त्री जिसके हृद्य में बसी हो, तो मला जप-तप क्ष कहाँ ? श्रीर समाधि का विधान कहाँ ? फिर स्थिर मन होकर श्रपने ध्येय से पराङ्मुख हो जाता हैं। ठीक यही दशा महाराज की भी होने लगी। जब प्राण्प्यारी पिंगला से कुकृत्यों का उन्हें पता लगा तब उनके हृद्य में उसके प्रति घृणा हुई। उसी दिन से राजा के हृद्य में पक विशेष प्रकार का प्रकाश हो श्राया। श्रीर संसार से पेसा विराग हो गया—जिससे विषय-भोग विषेठे सर्प की मांति उन्हें प्रतीत होने लगे। पिंगला के वे सभी गुण दोष में परिणत हो गये। इसके छल छिद्र युक्त कपट-व्यवहार रहस्य एवं पापोत्पादक जानकर वे दुःखित हुए। इसलिये नाशवान सांसारिक क्षिणिक सुखों को छोड़, श्रविनाशी, नित्य, सत-चित्-श्रानन्दमय मगवान महेश्वर की श्राराधना में तत्पर हो गये। श्रीर तब से उनका पवित्र ज्ञान भासकर के संमान पृथ्वी पर चमकने लगा। उन्होंने यह सोचा—

अ द्विजराजमुखी मृगराजकटी, गजराजपराजितमन्द्रगती । यदि सा ललना हृद्यंगमिता, क जपः क तपः क समाधिविधिः ॥ १ ॥

"श्रहो वा हारे वा बलवित रिपो वा महादि वा मणी वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा द्वदि वा। तृणे वा क्षेणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः सदा पुरोयऽरएये शिवशिवशिवति प्रजपतः" ॥४०॥ (वराग्यशतकम्)

'शिव-शिव' जपनेवाले पुरुष ही धन्य हैं। उनको सांसारिक विषय-वासना कदापि नहीं व्याप सकती। इसलिये वे सब राज-पाट छोड़कर शिवजी का मजन करने लगे। भगवान् शंकर की कृपा से वे इतने बड़े ज्ञानी हो गये—जिससे उनका नाम पृथ्वीपर अमर हो गया। इसके प्रमाण के लिये उनका शतकत्रय (नीति-शतक, श्रुंगार-शतक और वैराज्य-शतक) देखने पोग्य है। यहाँ पर मैं भक्तों के विनोद के लिये वैराज्यशतक का कुछ पद्य उद्घृत करता हूँ। देखिये।—

गङ्गातीरे हिर्मागिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसमिविधना योगनिद्रां गतस्य ।
कि तैर्मान्यं मम छिदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः
कर्ण्ड्रयन्ते जरठहरिखाः शृङ्गमङ्गे मदीये ॥ १ ॥
व्याशानाम नदी मनोरथजना तृष्णातरङ्गाकुना
रागग्राहवती वितर्कविहगा धेर्यद्रमध्वंसिनी ।
मोहावर्तसुदुस्तरातिगहना मोज्जङ्गचिन्तातरी
तस्याःपारगताविशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥२॥
महादेवो देवः सरिदिप च सैवामरसारिदुग्रहा एवागारं वसनमिप ता एव हरितः।
सहद्दा कालोऽयं व्रतमिद्मदैन्यव्रतमिदं
कियद्वा वच्यामो वटविटप एवास्तु दियता ॥ ३ ॥
मोहं मार्जय तास्रपार्जय रितं चन्द्रार्थचूडामणौ
चेतः स्वर्गतरिङ्गिणीतटश्चवामासंगमंगीकुरु ।

को वा वीचिषु बुद्रबुदेषु च तहिल्लेखामु च स्त्रीषु च क्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ॥ ४ ॥ एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः । कदा शंभो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनन्नमः ॥ ५ ॥ स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिःशुचिकुसुमफलैरर्चियत्वा विभो त्वां ध्येये ध्यानं नियोज्य जितिधरकुहरग्रावपर्यद्भुमुले । अात्मारामोऽफलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्मसादात्स्परारे दुःखं मोच्ये कदांऽइं समचरणकरे पुंसि सेवासंग्रुत्थस्।।६ महा रम्या शब्या विपुत्तसुपधानं अजलता वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः। स्फरदीपअन्द्रो विरतिवनितासंगग्रुदितः मुलं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्रेप इव ॥ ७॥ कि वेदै: स्मृतिभि: पुराणपठनै: शास्त्रिभइ।विस्तरैः स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलंदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः। ग्रुक्त्वैकं भववन्यदुःखरचनाविध्वंसकालानलं स्वात्मानन्द्पद्भवेशकत्वनं शेषा विणग्रहत्तयः ॥ ८॥ चाएडालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः कि वा तत्त्वविवेकपेशलमातियोगिश्वरः कोऽपि किम्। इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः संभाष्यमाणां जनै-र्न क्रुद्धाः पथि नैवतुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥६॥

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे, जनार्दने वा जगदन्तरात्मानि । तयोर्न भेदमतिपत्तिरस्ति मे, तथापि मिनतस्तरुखेन्दुशेखरे ॥१०॥



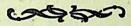
~ 3.

# चौरानवेवाँ रत

सती सत्यभामा

श्रीकृष्णजी की श्राठ पररानियों में से 'सत्यभामा' उनकी प्रिय मार्या थी। उसे लक्ष्मी का श्रवतार भी कहते हैं। एक बार कृष्णिप्रया सत्यभामा ने प्रभास क्षेत्र में जाकर शिवलिङ्ग की स्थापना की जिसके पूजन से सब पाप दूर होते हैं। माघ मास की तृतीया तिथि के दिन उन्होंने शिव की स्थापना की श्रीर सिविध पूजन करके श्रपने सभी मनोरथों को पाया था। इसलिये जो स्त्री या, पुरुष भक्तिमाव से भगवान् शंकर की श्राराधना-पूजा करता है श्रीर प्रतिवर्ष उस तिथि को व्रत रहकर शिव-पार्वती की पूजा करता है, वह श्रपने सब मनो-प्रां को पाकर सद्गति (शिवधाम) पाता है।

यस्तं पूजयते भक्त्या स मुक्तः पातकैभवेत् ॥"



## पश्चानवेवाँ रत महारानी कुमुद्रती

किरात देश में 'शूर-विमर्दन' नामक एक महा प्रतापी राजा हुआ। वहां खुआ को जीतने वाला, भूत-भविष्य वर्तमान को जानने वाला और शिव जी का अनुस्य भक्त था। उसकी धर्मपत्नी का नाम 'कुमुद्रती' था। जो परम प्रतिकातिया धर्मपरायणा थी। राजा में एक महान दोष भी था। वह कृपण, निर्द्यी और विकासी था, सब जाति की स्त्रियों को चाहने वाला वह नुपति प्रतिदिन

महादेवजी की पूजा किया करता श्रीर बिना लिंगार्चन किये श्रस्नग्रहण नहीं करता था। यह आलस्य रहित होकर दोनों पक्षों की चतुर्दशी (शिवरात्रि) को वत रहकर सविधि शिव-पूजन किया करता श्रीर उससे बहुत सन्तुष्ट करता था।

वह कभी २ शिवजी की प्रसन्नता के लिये स्वयं भी प्रेमोन्मत्त होकर नाचा करता और मधुर २ भजनी द्वारा उन्हें रिफाया करता था। परन्तु रानी-कुमुद्भती को राजा का नृत्य करना तथा परस्त्री प्रेम श्रादि करना कभी न भाता, वह सदा उसके दुराचारों से सन्तप्त रहा करती थी। एक दिन रानी ने राजा से प्कान्त में कहा:- "नाथ! श्राप का चरित्र वड़ा श्राश्चर्य जनक है। मला, कहाँ आपका वह भारी दुराचार और कहाँ परमेश्वर में पेसी हुढ़-मिक्ति ? (क ते महान् दुराचारः क मिकः परमेश्वरे ) राजा ने देर तक सोचकर विहैंसते हुए कहाः— 'ग्रिये ! में पूर्व जन्म में कुत्ता की योनि पाकर प्रमानगर में रहा करता और ब्यर्थ इधर-उधर घूमा करता था। एक बार एक शिवमन्दिर के निकट मैं घूम रहा था कि एक मद्रपुरुष भोजन की सामग्री लेकर उस मन्दिर में गया। मैं भी उसी के लालच में पड़कर मन्दिर के फाटक के पास जा बैंटा । तव तक पक दूसरा क्रूर पुरुष हाथ में द्एडा लिये वहाँ श्राया श्रीर सुके मारने दौड़ा। मैं वहाँ से प्राण बचाने के लिये दौड़ता हुआ उस मन्दिर के चारी और कई बार घूमा, मार भी खाई, परन्तु छोम के मारे में पुना फाटक पर ही जा हटा।

उस दिन कृष्णपक्ष की चतुर्दशी थी, शिवरात्रि का कोई महा पर्व था। अतः भक्तों की भारी भीड़ थी। आना-जाना लगा ही रहा। कितने ही शिवभक्त माना प्रकार के पकवान् शिवजी को चढ़ाने के लिये लाये। इससे हमारा लोभ बढ़ता गया। सच बात तो यह है कि भ्वानयोनि में रहते हुए भी मुक्ते वहाँ बैठना और वह कौतुक (पूजा-पांठ) देखना बड़ा प्रिय मालुम होता था, इन्हीं कारणों से मैंने मार खाता हुआ भी पकवान् के लिये कई चक्कर लगाया । तब तक एक दूसरा क्रूर पुरुष भ्राया श्रीर फिर मेरां पीछा किया। इस बारी भी मैंने तीन चकर सगाकर दुराप्रहचश मन्दिर का द्वार नहीं छोड़ा और उएडे की बोर्ट से वहीं पर एकाएक मर गया। भगवान् शंकर की प्रदक्षिणा से और उनके निकर्व (मन्दिर पर ) मरने से आज में शुद्ध प्रतापी एक राजवंश में उत्पन्न होंकर नाना प्रकार के भोग-विलास को भोगता हूँ। श्रीर हे भामिनि ! मैं उन्हीं भगवान शंकर की कृपा से अविकालज्ञ हुआ हूँ। इसीलिये पूर्वजन्म के संस्कार वश में परमेश्वर में भक्ति रखता हुआ किसी प्रकार उनका भजन (नाच-गाकर भी) किया करता हूं। इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। देखती नहीं हो ?स्वयं भी महा प्रभु शंकर जी भवानी पार्वती के साथ विराजते हुए किस प्रकार त्रिगुणातीत † सिद्ध योगी बने रहते हैं।

राजा की धर्म युक्त प्रिय वाणी सुनकर रानी गद्गद हो गई और भगवान् शंकर के गुणानुवाद सुनाते रहने की प्रार्थना की। रानी ने कहा — स्वामिन्! ऐसे करुणालय को मैं आज आपकी दया से जान गई। अब मैं प्रतिदिन उनका पूजन किया करूँगी। प्राणनाथ! आप त्रिकालइ हैं — यह रहस्य भी मुक्ते आज मालूम हो गया। अतः आप कृपा करके मेरे पूर्व जन्म का चरित्र सुनाइये। राजा ने कहा—''हे वरानने! तुम उस जन्म में आकाशगामी पक्षी कीं योनि में जन्मी थी। पक बार चारा ढूंढती हुई तुमने मांस का पिण्ड पाया। तुम्हारे चोंच में मांसपिएड देखकर एक बलवान् गीध ने तुम्हारा पीछा किया। तुम्हारे चोंच में मांसपिएड देखकर एक बलवान् गीध ने तुम्हारा पीछा किया। तुम उड़ती हुई एक शिवालय की प्रदक्षिणा करके शिव-ध्वजा पर जा बैठी। गीध ने पहुंचकर अपने तीखे चोंच से ऐसा मारा कि तुम वहीं गिरकर मर गई और वह मांस का पिएड लेकर उड़ गया। देवदेव श्रीशिवजी की प्रदक्षिणा करके उनकी सिविधि में मरने के कारण इस समय तुम राजकुमारी होकर मेरी राजमहिषी! (रानी) हुई हो।"

इसिलये पे प्रिये! हम लोग श्रब शिवाराधन में सदा तत्पर रहते हुए इसी प्रकार राज्य-सुखोपमोग किया करें। श्रन्त में महेश्वर की द्या से हम लोगों का मनोरथ श्रवश्य सिद्ध होगा। क्योंकि जिन लोगों ने ज्ञान से या श्रज्ञान से भी शिर्वार्चन (लिंगार्चन) किया है, वे लोग श्रवश्य शिवधाम में जाकर उनके पार्षदों में मिल गये हैं। श्रीर श्रन्त में विमुक्त हुए हैं। इसिलये—

इच्ट्वा चतुर्दशीपूजां दीपमाला विलोकिताः।
तेन पुरयेन महता त्रिकालज्ञोऽस्मि भामिनि ॥ २२ ॥

<sup>ो</sup> नैस्त्रिगुर्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः।"

<sup>‡</sup> प्रदिश्चिणप्रकरणाइवदेवस्य भूलिनः । तस्याप्रे मरणाच्चैव जातासीह नृपाङ्गना ॥ ३०॥ (ब्रह्मो० ख० ४ अ०)

शिवपूर्णं सदा कुर्याद्बुद्धिमानिह मानवः । अशक्तरचेत्कृतां पूजां पश्येद्धक्तिविनम्रधीः ॥ अश्रद्धयापि यः कुर्याच्छिवपूजां विग्रक्तिदाम् । पश्येद्धा सोऽपि कालेन प्रयाति परमं पदम् ॥

# ब्रानवेवाँ रतन

श्विभक्त राजा भद्रायु और उनकी रानी कीर्ति-मालिनी

एक समय राजा 'मद्रायु' अपनी राजमहिषी 'कीर्ति-मालिनी' को साथ

लेकर वन में अमण करने के लिये गये। यथेष्ट विचरते हुए राजा विश्राम की

इच्छा से एक सुन्दर सुशीतल छायादार वृक्ष के तले जा बैठे। एकान्त में वे

इम्पति बैठे हुए आपस में शिव-चर्चा करने लगे। रानी के पूछनेपर राजा ने

मगवान शंकर की अनेक कथाएँ उनको सुनायाँ। परन्तु शिव-भक्त दम्पति

को कहने-सुनने से तृप्ति नहीं होती थी। जब सन्ध्या होने को आयी और ये

लोग उठकर अपने स्थान को चलने का विचार करने लगे। इसी बीच जग
जननी श्रीपार्वती के साथ नित्य विचरने वाले श्रीमहादेवजी ने राजदम्पति की

शिवमक्त-परीक्षा करनी चाही।

मकों के लिये लीला-वपुधारने में निपुण नटनागर मगवान शम्भुने वहाँ शीव ही एक 'विज्ञदम्पति' राजा के सामने कर दिया । अर्थात् शिवजी ब्राह्मणं का और पार्वतीजी ब्राह्मणी का वेष बना, स्वयं फिर माया-क्याव्र का वेष धारणं कर, उसी वन में गरजते हुए विज्ञदम्पति पर आक्रमण किया। सिंह के भय से भागे हुए ब्राह्मण और उसकी स्त्री दोनों राजा की शरण में आये और पुकार २ कर रोने लगे। हे शरणागत-पालक ! क्षत्रिय-कुलवीर!! मद्रायु !! हम लोगों को बचाओ। नहीं तो, ब्याव्र भक्षण करना चाहता है। महा बलधारी भद्रायुराजा करणाद सुन तथों दो स्त्री-पुरुष पर एक सिंह का आक्रमण देलकर उन्हें धीरज देते हुए दौड़े। तब तक सिंह ने ब्राह्मणी को पकड़ लिया और हे नाथ, हे शिवशम्भो ! पुकारती हुई उसे भक्षण कर गया। राजा ने उस विकराल ब्याव्र पर वाणों की वृष्टि कर दी; किन्तु उस कालस्वरूप माया ब्याव्र पर वाणों का कुछ भी प्रभाव न पहा। इधर स्त्री का विनाश एवं श्रपने

व्राणीं की भी निराशा देखकर ब्राह्मण श्राश्चियत हो, विलाप करने लगा। श्रीर राजा से मर्मवेधी पर्व श्रपमान-स्चक शब्द का प्रयोग करने लगा।

ब्राह्मण बोला — राजन्! तुम्हारा वाहु-बल कहाँ गया ? तुम्हारे शतु-संहारी वे तीक्षण वाण विकल क्यों हो रहे हैं? तुम्हारी ख्याति और शूर-वीरता किस दिन काम आवेगी? तुम्हारे लिये क्षत्रियक शब्द व्यर्थ होरहा है। भला, तुम्हारे देखते २ हमारा आधा अंग (स्त्री) विनष्ट हो गया, अब यह अर्धाङ्ग (हमारा श्चुद्र शरीर) रह कर ही संसार में क्या करेगा? जो जीते जी अपनी स्त्री की रक्षा नहीं कर सका—अथवा जो शरणागत में आये को न बचा सका—ऐसे लोगों को संसार में जीना भी धिक्कार है?

पे राजन्! में तो अधीर होही जुका है। अब तुम हमारी रक्षा करके अपने यश की रक्षा करो। गो-ब्राह्मणों के लिये शरीर देकर भी उन्हें बचाना स्त्रिय राजाओं का परम धर्म कहा गया है। अपने धर्म को त्यागना पर्व सम्माविता की अकीर्त्ति होना संसार में मरने से भी अधिक है।

इस प्रकार अपने पराक्षम (क्षत्रियधर्म) की निन्दा सुनकर राजा शोकाकुल हो विचारने लगा-'हाय! आज प्रारुघ के विपरीत होने से पुरुषार्थ भी मानो नष्ट हो गया। जब मैं अपने पूर्वजों की ही कीत्ति नहीं बचा सकता, तब मिक्य में किति क्या कमाऊँगा? मेरी शरण में आई हुई दीन ब्राह्मणी मर गई। इसिलये महापातक का दोष लगा। अब मेरे जीवन को सचमुच धिकार है।' यह विचार महाराज भद्रायु नत-मस्तक हो, ब्राह्मण के चरणों में गिरकर नम्र चचन बोले—हे ब्राह्मण्देव! मुक्त से बड़ा पाप हो गया। मेरा उद्धार कैसे होगा। मुक्तपर दया करिये और शोक त्यागकर मुक्त से कुछ माँगिये। मैं राजा है, आप ब्राह्मण हैं। अतः हर प्रकार से आपको सन्तुष्ट करना मेरा धर्म है। आपकी जो इच्छा हो, माँगिये। पर मुझपर कोध न करिये। ब्राह्मण बोले—अन्धे को दर्पण से क्या लाभ ? भला, बिना स्त्री के मुक्ते धन से क्या प्रयोजन! इसिलये यदि कुछ देना चाहते हो तो अपनी धर्मपत्नी को ही दे दो—मेरी यही कामना है।

े ब्राह्मण की पेसी विकट माँग सुन, राजा दुःखित होकर बोछे— है विप्रवर! हाथी घोड़ा या समस्त राज्य भो आप छे सकते हैं, पर दूसरे की स्त्री

क्षः चतात्किल त्रायत इत्युद्धः चत्रस्य शब्दो सुवनेषु रूढः । (रघुवंश)

की क्यों चाहना करते हैं ? परस्त्री-प्रहण से प्रायश्चित्त बढ़ता है और ब्राह्मणो-बित धर्म भी यह नहीं है । इसलिये स्त्री को छोड़कर दूसरी कोई अन्य बस्तु मौगिये।

व्राह्मण बोले - राजन् ! में महापातकों को भी अपने तपो-बल से भस्म कर दूंगा, फिर परस्त्री-प्रहण के दोष की कौन गिनती ? इसलिये आप पाप का भय त्यागकर मुक्ते अपनी स्त्री दीजिये, और कुछ मुक्ते नहीं चाहिये।

ब्राह्मण के पेसे कठोर घवन को सुनकर राजा काँपने लगे। उनका वह हृदय-जो बड़े २ शतुओं के आक्रमण को तुण के समान जानता था, जो घोर से घोर संकटों में पर्वत की तरह निश्चल रहता था, साहस और धैर्य्य में जो एक या, वह भी ब्राह्मण के इस चवन से पीपल को पत्ति के समान काँपने लगा और अस्ततोगत्वा उन्हें ब्राह्मण की क्रोधारिन (शापारिन) का ध्यान आया। अतः सैसा करने को विवश होना पड़ा। मन में यह सोचा कि ''ब्राह्मण देवता को अपनी प्रिय भार्या समर्पित करके में अग्नि में प्रवेश कर्रे।'' यह विचार निश्चय करके उन्होंने स्नानादि नित्यिक्रया करके चिता लगाई और उस ब्राह्मण को अपनी स्त्री का दान (संकराद्वारा) कर, श्रीशंकरजी का ध्यान करते हुए वे स्वयं

माशुदोष भगवान ने अपनी शरण में आये हुए राजा के इस धर्ममय कार्यपर प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया। राजा के अपन में प्रवेश करते ही वह माह्मण शीम ही शिवजी के रूप में—पंचवदन, त्रिनेत्र, चतुर्भुंज, त्रिशूल- हमक्षारी,जटाज्य में गंगा, भाल में चन्द्रमा तथा समस्त अङ्गों में विभूति धारण किये, नाग यक्षोपवीती, सर्गों के कर्उहार वाले व्याम्रचर्म ओहे, तथा व्याम्रचर्म पर ही सिद्धासन लगाये स्थित, आस-पास में नन्दि-भूंगी-आदि वाहन तथा गणोंसे युक्त पवं देवी-देवताओंसे सेवित—श्रीशंकरजीका दर्शन कर वह राजा विस्मय के साथ अपार हर्ष को प्राप्त हुआ। राजा स्तुति करने लगे, देवता लोग पृष्पवृष्टि करने लगे। भगवान प्रसन्न होकर बोले—राजन ! तुम्हारी इस धर्ममय मिक्त से में अत्यन्त सन्तुष्ट हूं। मैंने तुम्हारी भिवत एवं राजधर्म की परीक्षा के लिये ही यह माया रचो थी। वास्तव में न वह ब्याम्र था, न द्विजदम्पति। सर्व मेरी माया थी। इसलिये तुम विता से उतरो और स्त्रीसहित तुम्हारी जो

अ इन्द्रकुलिश मम जूल विशाला । कालद्रांड हरिचक कराला ॥ जे इनकर मारे ना मरई। विप्ररोष-पावक ते जरई ॥ (रामा० उ० कां०)

मनोकामना हो, निर्भय होकर मुक्त से माँगो। तुम्हारे लिये मुक्ते कोई भी वस्तु अर्य नहीं है। यह खुनकर आनन्द से गद्गद तथा आँखुओं से भींगे हुए शरीर वाले प्रसन्न रोमों से पुलकित राजा ने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा—प्रभो! यदि मुक्तपर आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो मेरे पिता वज्रवाहु मेरी माता सहित तथा में भी अपनी स्त्री सहित आपके श्रीचरणों की अप्राप्य विमल भिक्त पाऊँ। शिवजो ने राजा से "प्रवमस्तु" कहकर रानी कार्ति-मालिनी से कहा—तुम भी वर माँगो। रानी ने कहा—भक्तवत्सल। प्रभुवर!! मेरे पिता चन्द्राङ्गद तथा माता सीमन्तिनी देवो इन दोनों को भी आपकी भिक्त मिले और ये दोनों आपके निकट सदा निवास करें।" यह सुनकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्धान हो गये और राजर्षि भद्रायु एवं राजामिषही कीर्ति-मालिनी शिवभिक्त में परायण हो, दश हज़ार वर्षों तक राज्य-सुखोपमोग करके शिवधाम गये। इस कथा को जो पढ़ता—सुनता और दूसरों (श्रद्धालु शिवभक्तों) को सुनाता है, वह भी अपने जीवन को सुखमय बिताते हुए अन्त में शिवधाम सिधारता है। देखिये न ?

"एतत्पवित्रमञनाशकरं विचित्रं, शम्भोर्गुणपकथनं परमं रहस्यम् । यः श्रावयदेव्बुधजनान् प्रयतः पठेद्वा,सम्प्राप्य भोगविभवं शिवमेति सोऽन्ते॥७६॥ (ब्रह्मो० खं० १४ ८०)



# सत्तानबेवाँ रत

#### राजकन्या 'सीमिन्तिनी'

श्रार्यावर्त देश में 'चित्रवर्मा' नामक एक प्रसिद्ध धर्मातमा राजा हुआ। कहा जाता है कि वह दुष्ट-दुराचारियों के लिये यमराज तथा साधु-सदाचारियों के लिये धर्मराज था। सभी शत्रु उसके पराक्रम से काँपते थे। शरणागत पालक वह राजा उस समय संसार में श्रद्धितीय पुण्यातमा कहाने लगा। चारों श्रोर उसकी यशश्चिन्द्रका फैल गई। उसको उन्हीं के समान एक पुत्र भी था। वह राजा शिव-विष्णु में श्रमेद रखता हुआ दोनों की पूजा-श्रर्चना किया करता था।

बहुत दिनों बाद राजाको एक कन्या उत्पन्न हुई। सब खुलक्षणों से युक्त उस कन्या को पाकर राजा ऐसे प्रसन्न हुए जैसे पार्वती को पाकर हिमालय

और लक्ष्मी को पाकर समुद्र प्रसन्न हुए थे। कुल-पुरोहित एवं अन्यान्य विद्वान् ब्राह्मणों को बुला, उन्हें दान-दक्षिणा से सन्तुष्ट करके राजाने उसके जन्मका फलाफल पूछा-उनमें से एक भविष्यद्वेत्ता ने कहा-राजन् ! आपकी यह कन्या पार्वती के समान सती, दमयन्ती के समान रूपवती और लक्ष्मी के समान गुण्वती होगी। श्रीर इसका नाम "सीमन्तिनी" होगा । यह दस हजार वर्ष तक - अपने पित के साथ आनन्द करेगी। परन्तु एक विचारवान् ब्राह्मण ने कहा-महाराज ! इस कन्या के चौद्हवें वर्ष में वैधव्ययोग पड़ा है। इस प्रकार ब्राह्मणों द्वारा द्वैध वचनों को सुन कर राजा बड़े चिन्तित हुए। श्रन्त में यथायोग्य सब ब्राह्मणों की विदाई करके वे राजकाज में लग गये।

उधर राजकुमारी जब बड़ी हुई श्रीर व्याहने योग्य हो गई, तब एक दिन उसने अपनी किसी सखी से अपने वैधव्ययोग की चर्चा सुनी । तब से उसके चित्त में चैराग्य हो आया। इसलिये उसने मुनियत्नी मैत्रेयी से जाकर निवेदन किया। राजकन्या बोली-प्रातः! भय से विकल में आपकी शरण में आयी हूं। अतः आप सौभाग्य-वर्द्धक कोई ऐसा उपाय बतलाने की द्या करें-जिससे स्त्रियों का वैधव्ययोग नष्ट होकर वे सौभाग्यवती बनी रहें। मैत्रेयी बोली-पुत्री ! शिव समेत पार्वतीजी की शरण में जात्रो श्रीर नियम से स्नानादि करके प्रति सोमवार का व्रत करो। इससे सभी इच्छाएँ पूर्ण होंगी। क्योंकि भावी (प्रारब्ध) भी शिवाराधना से मिट सकती है #। विधिवत् लिंगार्चन एवं पूजर-ध्यान से तुम्हारा श्रवश्य कल्याण होगा। दिन उनके नमस्कारमात्र से ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मिल जाता है। उनके केवल 'शिव' नामके जपने से ही सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इसलिये हे राजपुत्रि ! तुम शिवालय में जांकर यही उपाय करो।

राजकुमारी मुनिपत्नी के कथानुसार शिवार्चन में लग गई। कुछ दिनों के बाद सीमन्तिनी का विवाह राजा इन्द्रसेन के पुत्र चन्द्राङ्गद से हुआ। रोजा इन्द्रसेन महाराज नल की धर्मपत्नी दमयन्ती के पुत्र थे। राजा चित्रवर्मा ने सीमन्तिनी का विवाह वड़े धूमधाम के साथ किया। तदुपरान्त चन्द्राङ्गद भी यहीं (श्वशुर गृह) रहने लगे ।

एक दिन अपने मित्रों के साथ राजकुमार नाव पर सवार होकर यमुनाजी में जल-क्रीड़ा कर रहे थे। इसी बीच संयोगवश नौका चकोह में

क्षभावी मेटि सकहिं त्रिपुरारी। (रामायण्)

पड़कर डूब गई। वे सभी निषाद सित वहीं डूब गये। यमुनाजी के दोनों तटों पर बैठे हुए लोगों ने हा-हाकार मचाया। यह दुर्घटना देख, लोग आश्चर्य के साथ दुःखो हुए। महाराज चित्रवर्मा सूर्विछत हो गये। यहों के समझाने— दुक्ताने पर उन्हें कुछ शान्ति मिछी। चित्रवर्मा ने अन्तःपुर में जाकर अपनी रानी तथा कन्या को समकाया। अन्त में रानी चिलाप करती हुई बोली— हाय दुवेंव! हाय चिधाता!! आज देवाराधन भी किसी काम नहीं आया। लोग कहते हैं "सृषा न होहिं देव-ऋषि वाणों" परन्तु हाय! आज मुनियत्नी मैत्रेयी का भी कथन मिथ्या हुआ! कुमारी ने जिस निमित्त से श्रीशंकरजी का ध्यान-पूजन किया, वह भी सब व्यर्थ हुआ। अब क्या किया जाय-इत्यादि चिछपती हुई स्त्रीको राजा ने समका-बुक्ताकर शान्त किया।

ंडधर चन्द्रांगद के अलक्ष्य हो जाने पर चित्रवर्मा को उनके भाइयों ने कैर करके राज्य छीन लिया। इधर चन्द्रांगद ने जल में डूबकर नाग-नारियों को देखा। जल में कल्लोल करती हुई' नागिनों का भी ध्यान जव राजतेज से चमकते हुए उस राजकुमार पर गया, तब शीघ्र ही वे उसे पाताल लोक में ले गई'। वहाँ राजकुमार ने अनेक अलौकिक चीज़ें देखीं। वहाँ चमकते हुए सिंहासन पर विराजते हुए नागराज तक्षक को देखकर राजकुमार बड़ा चिकत हुग्रा। पातालपित तक्षक ने राजकुमार से पूछा— हे राजकुमार ! तुम डरो मत । धीरज घारण करो और अब यह बतलाओ कि तुम किसके पुत्र हो ? राजपुत्र बोला—मैं पृथ्वीमएडल में निषध देश के राजा नल महाराज के पुत्र इन्द्रसेन का पुत्र हूँ। आपके दर्शन से आज कतार्थ हुआ। तक्षक ने फिर कहा-देवताओं में किसको पूजते तथा सर्वश्रेष्ठ समझते हो ! रांज-पुत्र बोला—है पातालेश्वर ! हम लोग पार्वतीपति श्री शं करजी की पूजा करते हैं इमारे कुल के वे ही पूज्य देवता हैं। जिनके श्रंश से रजोगुण रूपधारी ब्रह्मा जी संसार की रचना करते हैं, जिनके सात्विक गुणों द्वारा विष्णु भगवान् संसार का पालन पोषण करते हैं और जिनके तमःप्रधान अंश को लेकर रुद्र रूपधारी संसार का संहार करते हैं। अर्थात् सभी देवो-देवताओं के भी आदि कारण, बड़े से भी बड़ा तथा छोटे से भी छोटा भगवान् महेश्वर समस्त भूमण्डल के श्रादि कारण, एक, श्रद्धितीय, निर्विकार, सच्चिदानन्द, ब्रह्मस्वरूप हैं—ऐसे श्र शंकर जी हमारे पूज्य देवता हैं। हम उन्हीं के पूजन-भजन में सदा लगे रहते हैं। जिन भगवान को भिन्न २ मतानुयायी भिन्न २ स्वरूप श्रीर नाम बताते हैं-पेसे हानमय, श्रचिन्त्य भगवान् शंकर हमारे पूज्य देवता हैं। देखिये न ? हमारे पूज्य शंकर महादेव कैसे हैं:—

ममेकमाद्यं पुरुषं पुराणं वदन्ति भिन्नं गुण्वैकृतेन ।

चेत्रज्ञमेकेऽथ तुरीयमन्ये कूटस्थ मन्ये स शिवो गातिर्नः ॥ ९१ ॥

यं नास्प्रशंश्चैत्त्यमचिन्त्यतत्त्वं दुरन्तधामा न मतत्त्वरूपम् ।

मनो वचो वृत्त्त्य आत्मभाजां स एव पूज्यः परमः शिवो नः ॥ ९२ ॥

यस्य प्रसादं प्रतिलभ्य सन्तो वाञ्छन्ति नैन्द्रं पदमुज्ज्वलं वा ।

निस्तीर्णकर्मार्गलकालचक्राश्चरन्त्यभीताः स शिवो गतिर्नः ॥ ९३ ॥

यस्य स्पृतिः सकल पापरुजां विघातं सद्यः करोत्यपि च पुरुकसजन्मभाजाम् ।

यस्य स्पृतिः सकल पापरुजां विघातं सद्यः करोत्यपि च पुरुकसजन्मभाजाम् ।

यस्य स्वरूपमित्वलं श्रुतिभिर्विमृग्यं तस्मै शिवाय सततं करवाम पूजाम् ॥ ९४ ॥

यन्मूर्द्भिन लञ्धनिलया सुरलोकसिन्धुर्यस्याङ्गगा भगवती जगद्भित्रका च ।

यत्कुर्यक्ले त्वहह तज्ञकवासुकी द्वौ सोऽस्माकमेवगितरर्धशशांकमौलिः ॥ ९५ ॥

जयित निगमचूडामेषु यस्याङ्ग्विपदां जयित च हृदि नित्यं योगिनां यस्य मूर्तिः ।

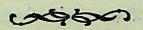
जयित सकल तत्त्वोद्वासनं यस्य मूर्तिः स विजितगुण्यसर्गः पूज्यतेस्माभिरीशः ९६

इस प्रकार शिवजों की महिमा सुनकर पातालपित के हृद्य में भगवान् शंकर के प्रति हृद्ध श्रद्धा-मिक्त उत्पन्न हो गई। इसिलये तक्षकराज ने कहा— हे नुपिकशोर ! मैं तुम्हारे ऊपर श्रत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम श्रानन्दपूर्वक स्वतंत्र होकर यहाँ पर- विहार करो; क्योंकि तुम श्री शिवजी के गूढ़ तस्त्व को जानने वाले हो। नागराज के ऐसे वचन को सुनकर उदार बुद्धिवाले चन्द्रांगद ने हाथ जोड़कर बड़े हर्ष से कहा—हे नागेश्वर! मेरा विवाह हो खुका है, उत्तम व्रतवाली, शिवपूजन में परायण मेरी स्त्री स्त्रती है। श्रीर मेरे माता-पिता भी मेरे वियोग से दु:खित होंगे। में उनका एकही पुत्र हूँ। वे पुत्र-शोक से सन्तदत्त होंगे। श्रतः मुक्ते श्रपने लोक में जाने की श्राक्षा देवें—यही मेरी श्रिमेलाषा है। यदि श्राप प्रसन्न हैं तो यही श्राक्षा दें, ताकि में श्रपने घर पर जाकर श्रपने माता पिता को सुखी कर सकूं। राजकुमार के ऐसे सत्य वचन को सुनकर नागराज ने चन्द्रांगद को श्रनेक वस्त्रामुषणों द्वारा सन्तुष्ट करके एक दिव्य श्रश्य पर चढ़ा-कर पातालपुरी से पृथ्वी पर भेजा। राजकुमार के साथ दो सर्पपुत्र—जो बड़े वोर थे, कर दिये श्रीर उन्हें धन-धान्य से परिपूर्ण करके यह कहा, कि तुम मुक्ते जब स्मरण करोगे, मैं शोध ही वहाँ श्रा जाऊंगा। राजिकशोर वहाँ से यमुनातर पर आकर इधर उधर घूम रहे थे, कि इसी बीच राजकुमारी भी अपनी सखी-सहेलियों के साथ यमुना-स्नान के लिये वहाँ आ पहुँची। राजकुमार ने उसे चिन्तित देखकर पूछा—तुम कौन हो ? तुम्हारे इस बाल्यकाल में ही शोकातुर होने का क्या कारण है ? यह सुन राजकुमारी तो लिजत-सी होकर मोन रही, पर उसकी एक सखी ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजकुमारी के पूछने पर चन्द्रांगद ने भी अपना किल्पत परिचय देता हुआ कहा—देवि! मैंने तुम्हारे पित को इसी संवार में देखा है। तुम अपने वत में इसी प्रकार लगी रहो। भगवान् शंकर की द्या से वह शीघ्र ही तुम्हें मिछेंगे। मैं उन्हीं का चिर मित्र हुं, और ये दोनों मेरे दूत हैं। मैं एक सिद्ध महात्मा हुँ। अब में उनके घरपर चन्द्रांगद के पुनरागमन का शुम-सन्देश सुनाने जा रहा हूं।

इधर सीमन्तिनी और उसकी सिखयाँ प्रेम से गद्गद होकर शिवजी की मिहमाकी भूरि २ प्रशंसा करने लगीं, उधर राजकुमार अगनी राजधानी में पहुँचकर एक उपवन में जा बैठा और अपने एक दूत को भेजकर संदेशा भेजा। दूत ने जाकर राजा से कहा, कि इन्द्रसेन को छोड़ दो और उसका राज्य उसे दे दो, नहीं तो उसका पुत्र (चन्द्रांगद) पातालपुरो से ऋदि-सिद्धि के साथ यहां आ गया है। आखिर तुम लोगों को उसके वाणों द्वारा प्राण देना पड़ेगा। इसिलिये अभी से सावधान हो जावो।

इधर सपितिक राजा छोड़ दिये गये। चन्द्रांगद के स्वागत के लिये सब लोग नगर से बाहर आये, और बड़ी धूम-धाम से उन्हें ले जाकर राजगद्दी पर बैठाये। उधर चित्रवर्मा को अपने दामाद का आगमन सुनकर अपार हर्ष हुआ। अतः अनेक वस्त्राभूषणों से सुसज्जित असंख्य धन के सहित अपनी पुत्री सीमन्तिनी को उसके ससुराल में मेजा। कुछ ही दिनोंमें उनके आठ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। इस प्रकार श्रीशंकरजी की भक्ति से वे सब बहुत दिनों तक राज्यसुख भोग करके अन्त में शिवधाम को गये।

यः सात्ती सर्वभूतानां च त्रात्मस्थो निरञ्जनः । यस्येच्छावशगो लोकः सोऽस्माभिः पूज्यते शिवः ॥ ६१ ॥ ( ब्रह्मोत्तर खरड ८ ४० )



## ब्रहानबेवाँ रतन रानी सुमति

श्रवन्तीपुरी में 'मन्दर' नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह महाविषयी परदारापहारी तथा व्यभिचारी था। वह किसी भी उपाय (चोरी बदमाशी श्रन्यायद्वारा) से धन कमाना चाहता था। सन्ध्यादि नित्य क्रियाओं से रहित; गो-ब्राद्धण-सुरद्वेषो, कुमार्गगामी होने के कारण वह उस समय हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। वह 'पिक्नला' नामक वेश्या में श्रासक्त होकर उसी के यहाँ रहने भी लगा। खाना-पीना, उठना-बैठना सब उसी के साथ कर लिया। वे दोनों विषयानन्द में श्रदुरक्त होकर श्रपने सामने संसार को तुच्छ समक्षने छगे।

पक बार उसके घरपर 'ऋपभ' नामक कोई शिवयोगी उसे गृहस्थ समभकर, उसके यहां आया। उसे देखकर इन दोनों ने अपना श्रहोभाग्य समभा और हुषं के साथ योगी का आतिथ्य सत्कार किया। उनके चरणों को धोकर सिर छगाया और बड़ी भाव-भक्ति से रात भर उनकी सेवा की। योगी प्रसन्त हो, आशीष देकर प्रभात होते ही चला गया। कुछ समय बीतने पर वे दोनों मर गये, और अपने २ कर्मवश फिर जन्मे।

दशाणंदेश के राजा 'वज्रवाहु' की रानी 'सुमित' के गर्म से उस ब्राह्मण का पुनर्जन्म हुआ। जिस समय रानी गर्भवती हुई, उस समय से उनकी सपित्यों को बड़ा सन्ताप होने लगा। वे अपनी बड़ी सीति के इस अभ्युद्य को न सह सर्की और लगी द्वेष करने। ईच्यांवश एक दिन सीतियों ने मिलकर रानी सुमित को किसी प्रकार विष खिला दिया। परन्तु दैवयोग से वह न मर सकी। उसकी गर्मों का बड़ा भारी असर गर्म पर अवश्य पड़ा। किसी प्रकार ओषधिप्रयोग से गर्भपात तो न हो पाया; परन्तु जो असहा वेदना उस रानी को हुई, वह बही जानती होगी। क्लेश से विकल होकर रानी सदैव रोया करती थी। उसका रोना सुन राजा को बड़ा कष्ट होने लगा। जब दसवें मास पर उसे एक सुन्दर तेजस्वी राजिवहों से युक्त पुत्र हुआ, तब राजा को भी परम आनन्द मिला, सभी प्रजी सुली हुई। परन्तु राजा की शेष रानियों को अपार कष्ट हुआ।

उसे विष की गर्मी से प्रसव होने पर भी कई महीनों तक रानी को बड़ी वैदना सहनी पड़ी। साथही बालक भी क्लेशित रहने लगा। बचपन में इसके असहा दुःख को राजा भी न सह सके। दिनरात-रोना-कल्पना सुन-सुनकर राजा-रानी चिन्तित रहा करती थीं। जब चिकित्सा करने पर भी उसका स्वास्थ्य नहीं सुधरा और रोना-चिल्लाना भी बन्द नहीं हुआ, तब अपना निद्रा-भंग तथा अत्यन्त कछ होते जानकर राजा ने महारानी सुमित को उसके नवजात शिशु के साथ ही रथपर वैठाकर सारथीद्वारा किसी दूर के वन में छोड़वा दिया।

निर्जन वन में त्यागी हुई श्रकेली रानी, अपने पुत्र को गोद में छिपाये ध्यर-उधर घूमती हुई, रास्ते में भूख-प्यास के मारे व्याकुल हुई, जल दूँढ़ रही थी। इसी वीच उसने एक नगर देखा। उसके मन में कुछ धीरज श्राया। श्रनेक कुश-कंटकों से वींधती हुई रानी नगर के समीप पहुँची। उस नगर में एक वड़ा धनी-मानी नगरपित वैश्य था। उसका नाम 'पद्माकर' महाजन था। उस महाजन की एक गृहदासी श्राती हुई रानो के पास पहुँची। रानी ने श्रपना सब वृत्तान्त उससे कह खुनाया। वह वेचारी दासो भी राजा के इस निष्ठुर व्यवहार से दुःखित हुई। श्रतः रानी को वह महाजन के पास छे गई श्रीर सब वृत्तान्त कह खुनाया। रानी के इस कष्ट को खुनकर पद्माकर को भी बड़ी द्या श्रायी। श्रतः उसका श्रपने यहाँ बड़ा श्रादर-सरकार किया श्रीर श्रपना एक घर दे दिया, रानी उसी में खुख से रहने लगी।

देव बड़ा प्रबल है। अभी तक रानी का उसने पीछा नहीं छोड़ा। निर्जन वन के अनेक कच्छों से जान तो बच गई; परन्तु बालक का रोग नहीं दूर हुआ। अब और भी वह अस्वस्थ होगया। वैश्य ने भी चिकित्सा कराकर हार खायो। निदान बालक की मृत्यु हो गई। वह अनाथ रानी विलाप करने छगी। हा! देव सचमुच हो वड़ा निष्ठुर है। एक पर एक दु:ख आताही रहता है। उसी समय महाजन के यहाँ एक अध्वभ नामक योगी आये और वैश्यपित हारा रानी के पास छाये गये। योगी ने रानी को दु:ख से कातर एवं पुत्र-शोक से विह्न देखकर बहुत समकाया।

श्रूषभयोगी ने रानी से कहाः—हे सुमते! संसार में कौन किसका है ? कौन मरता और जीता है ? श्रात्मा तो सबकी एक है। सभी जीव समान हैं। मरना-जीना तो शरीर का धर्म है। श्रात्मा तो श्रजर-श्रमर निर्विकार, श्रज तथा नित्य है। प्राणिवर्ग गुणों (प्रारब्ध) से रचे जाते हैं। श्रपने २ प्रारब्ध कर्म के भोगने वास्ते सभी जीव संसार में श्राते हैं, मिथ्या मोहजाल श्राकर फँसते हैं और माता-पिता, पुत्र-कलत्र, स्त्री-पुरुष, शत्रु-मित्र के बन्धन में श्रासक होकर

संसार-सागर में निमम रहते हैं। यह जीव परब्रह्म परमात्मा के अंश से (अव्यक्त से व्यक ) जल के बुल्ले के शहुश उत्पन्न होता और फिर यथाकाल (अव्यक्त से व्यक ) जल के बुल्ले के शहुश उत्पन्न होता और फिर यथाकाल उसी में विलीन हो जाता है। अपने पूर्वकृत कमों का मोका जीव इस संसार में आकर फिर कर्मानुसार शरीरान्तर में खला जाता है। इसी प्रकार वह सदा (जब तक कर्मबन्धन क्षीण नहीं होता ) आवागमन में लगा रहता है। और अपने २ कर्मानुसार खुल-वुःख भोगा करता है। ऐ रानी! प्राणी की क्षम्रायु, वित्त, अपने २ कर्मानुसार खुल-वुःख भोगा करता है। ऐ रानी! प्राणी की क्षम्रायु, वित्त, विद्या, कर्म, और मृत्यु आदि सब गर्भ में ही रचे जाते हैं। इसिलये तुम चिन्ता न करो। वयोंकि "नाकाले प्रियते जन्तुः कल्पकोटिशतैरिप''। बिना काल के कोई नहीं मर सकता। तुम्हारे पुत्र की इतनी ही आयु थी। इसिलये वह शरीरान्तर में चला गया। अब उसके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है। तुम शोक-मोह छोड़कर मगवान् शंकर की आराधना करो। क्योंकि एक न एक दिन सब की मृत्यु होगी। लड़का तथा राजा अपने कर्मवश है और तुम अपने कर्माधीन हो। सब जंजाल छोड़कर यदि तुम खुली रहना चाहती हो, तो हे वरानने! 'सृत्युक जय भगवान् की शरण में जाओ'—यह मेरा अन्तिम उपदेश है। यथाः—

श्रतो जन्मजरां जेतुं यदीच्छास वरानने !
शरणं त्रज सर्वेशं मृत्युञ्जयमुमापतिम् ॥ ७३ ॥
तावन्मृत्युभयं घोरं तावज्जन्मजराभयम् ।
यावन्नो याति शरणं देही शिवपदाम्बुजम् ॥ ७४ ॥
श्रत्युभ्येह दुःखानि संसारे भृशदारुणे ।
मनो यदा वियुज्येत तदा ध्येयो महेश्वरः ॥ ७५ ॥
मनसा पिवतः पुंसः शिवध्यानरसामृतम् ।
भूयस्तृष्णा न जायेत संसारिवषयासवे ॥ ७६ ॥
विम्रक्तं सर्वसङ्गेश्च मनोवैराग्ययन्त्रितम् ।
यदा शिवपदे मग्नं तदा नास्ति पुनर्भवः ॥ ७९ ॥

क्ष आयुः कर्म च। वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पंचैतानिप सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥
† नामुक्तं चीयते कर्म कल्पकोटिशतैरंपि॥

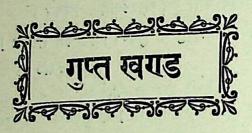
तस्मादिदं मनो भद्रे शिवध्यानैकसाधनम् । शोकमोहसमाविष्टं मा कुरुष्व शिवं भज ॥ ७८ ॥ ( ब्रह्मो० खं० १० अ० )

इस प्रकार शिवयोगी द्वारा समकाई गई वह रानी योगो के चरणों में सिर नवाकर फिर बोली—हे योगिराज! बन्धु-बान्धवों से पृथक् की गई तथा पित-पुत्र वियोग से व्याकुल मेरी मृत्यु के सिवाय और कौन गित है ! इसलिये में अब जीते-जी शिवजो का पूजन-ध्यान ककँगी। परन्तु मेरे पुत्र को जिलाकर मुक्ते सुखी करने की कृपा करें। यही में चाहती हूँ। रानी के इस दैन्य वचन को सुनकर योगी ने उसे धैर्य्य दिया और शिवजी के महामंत्रद्वारा अभिषिक्त करके उस बालक को शीघही जिला दिया। उसके समस्त अंगों में भस्म लेपन करके उसके सभी व्रण भर दिये। भस्म लगाते ही उस वालक के सभी अंग सोने के समान चमकने लगे। रानी ने अपने वालक के उस दिव्य शरीर को हृद्य से लगाया और प्यारसे चुम्बन करके उसे गोदी में बैठाकर दूध पिलाया। उसी समय बालक को लिये हुए रानी योगी के चरणों पर गिर पड़ी। योगी ने उसे उठाया और कहा—हे साध्व! तुम्हारा यह पुत्र 'भद्रायु' नाम से संसार में प्रसिद्ध होगा। इसकी ख्याति अमर होगी।" इस प्रकार मस्म के प्रताप से वह राजकुमार जीवित होकर संसार में परम सुख का मोग करते हुए अन्त में शिवधाम गया। रानी भी शिवधाम गयो।

तौ च तद्धस्मना स्पृष्टौ प्राप्तदिन्यकलेवरौ । देवानां सदृशं रूपं द्धतुः कान्तिभूषितम् ॥ ८६ ॥ (ब्रह्मो॰ खं॰ १० अ०)

(2000)

जो तुम दीन दयाल कहा आ ।। टेक॰ ॥
तौ मम हृदय विमल किरये प्रभु भक्ति भाव दरसावो ।
श्रीगौरी हिय रंजन शंकर मन मेरे बिस जावो ॥
वेगि हरो दारुण दुख दारिद अब जिन देर लगावो ।
देवी सहाय दास अपने को निज पुर वेगि बुला आ ।।



# निन्नानबेवाँ रत्न

## शिवभक्त 'सुंप्रिय' वैश्य

'सुप्रिय' नामक एक वैश्य शिवजी का परम भक्त था। वह धर्मात्मा, सदा-चारी तथा शैवधर्म-परायण था। वह निरन्तर भस्म-रुदाक्ष धारण किया करता था। बिना शिवपूजन किये जल तक नहीं प्रहण करता। शिव जी को बिना भोग लगाये वह कसी भी खाद्य पदार्थी का स्वयं भोजन करना महापाप समक्षता था।

पक दिन वह वैश्य व्यापार से निवृत्त होकर नाव द्वारा किसी दूसरी जगह जा रहा था। रास्ते में दैववश 'दाकक' नामक पक राक्षस नौका में स्थित मयु- क्यों को पकड़कर अपनी पुरी में ले गया। वहाँ दृढ़ बन्धन में उन्हें बाँधकर कारागार में डाल दिया। जेल में भी इस प्रकार शिवभक्ति देखकर सभी मयुष्य चिकत हो रहे। क्योंकि पूजनोपरान्त सुप्रिय वैश्य शिवपूजन करता हो रह गया। इस प्रकार पूजनोपरान्त सुप्रिय वैश्य शेष कैदियों को शिवपूजन का उपदेश करता एवं उनका माहात्म्य समकाया करता था। मंत्रजप एवं शिवलिंग की पार्थिवपूजा की विधि बतला कर, उन लोगों की इधर अभिक्षि पैदा करता था। थोड़े ही दिनों में कारागार के सभी कैदी शिवभक्त हो गये और छगे श्रीशंकरजी की तन-मन से आराधना करने। इस प्रकार उस वैश्य के शिवाराधन करते २ छ। मास निविध समाप्त हो गये।

पक दिन दारुक राष्ट्रास के किसी दूत ने जाकर उससे जेल की सारी श्रद्धत वार्ते कह सुनाई। दूत बोला—महाराज! श्रापने जिन्हें केंद्र किया है, वे सभी किसी देवता की श्राराधना में निमन्न रहते हैं श्रीर उनमें सुप्रिय नामक वैश्यपुत्र तो निरन्तर ध्यान लगाये रहता है। यह सुन क्रोध से लाल होकर दाँत पीसता हुआ वह दैत्येन्द्र कारागार में एकाएक श्रा पहुँचा। वहाँ दूत की सारी वार्ते सत्य देखकर वैश्यशिरोमणि सुप्रिय से उसने पूछा—पे वैश्य! द

यह क्या कर रहा है ? आँखें मूंदकर कीन सा षड्यंत्र रच रहा है ? सत्य २ कही, नहीं तो तुम आज सीधे यमलोक भेजे जावोगे। सुप्रिय ने कुछ उत्तर न दिया, विक निडर होकर शिवध्यान में ही ज्यों का त्यों लगा रहा। यह दशा देखकर वह अत्यन्त क्रोधित हो, अन्य राक्षसों को उसे मारने के लिये भेजा। राक्षसों को आते हुए देखकर वह वैश्य शिवजी का ध्यान करते हुए उनके नामों का उच्चारण करने लगा।

हे अक्त भयहारी शिवजी! हे त्रिलोकेश शंकरजी! हे मक्तवत्सल प्रभो !!
हे दुष्टदल-निकन्दन, द्यालु देवदेव !!! अपने इस दीन जनपर द्या करो
और दुष्ट के हाथ से प्राणों की रक्षा करके मुक्ते अपना विमल दर्शन दो।
इस प्रकार उस वैश्य की कृष्टण स्तुति सुनकर श्रीशंकरजी प्रसन्न हो गये और
उस कारागार के चौहदी के मध्य, एक ऊँचे स्थान पर चमकते हुए सिहासन में
स्थित, उयोतिःस्वरूप शिवलिंग का दर्शन देकर उसी में सपरिवार अपने पंचवदन त्रिनेञ्ज, सिर पर गंगा तथा ललाट में चन्द्रमा और समस्त अंगों में विभूति
रमाये हुए नागयज्ञोपवीती श्री शंकर जी ने दर्शन दिया! वैश्य ने फिर स्तुति
की। उससे प्रसन्न होकर उसे पाशुपतास्त्र प्रदान किया। उसी श्रस्त्र से सम्पूर्ण
राक्षसों का विनाश करके सुप्रिय वैश्य शिवधाम को चला गया। भगवान ने भी
यह आदेश किया कि जो मनुष्य श्रपने वर्ण-धर्म में स्थित रहते हुए मेरी आराधना
करेगा और इस उयोतिर्लिंग का दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा। आज
से इस लिंग का नाम 'नागेश' पड़ा। इस नागेश लिंग की उत्पत्ति एवं माहात्म्य
जो ध्यान से सुनेगा, वह बुद्धिमान, संसार में समस्त सुलों का भोग करके अन्त
में मुक्त होकर परमपद को पावेगा।

एतद्यश्रश्रुवान्नित्यं नागेशोद्भवमाद्रात् । सर्वान्कामानियाद्धीमान् महापातकनाशनान् ॥ (शि० पु० श० को० ६० सं ४ अ०)



### सौवाँ रत्न

### शिवभक्त एक वैद्य और उसकी भार्या

वैदित्य नगर में एक वैश्य रहता था। निर्धनता के कारण अपने भाइयों से तिरस्कृत होकर, अपनी स्त्री को साथ छे, वह सौराष्ट्र देश के अन्तर्गत चम-त्कारपुर के समीप अनर्तदेश में पहुँचा। मार्गश्रम से थक जाने के कारण वह पक सरोवर पर स्नानार्थ गया। वह सरोवर विविध रंग के सुन्दर कमलों से शोमायमान हो रहा थां। निर्मल तथा शीतल जल हृद्य को ठएढा करने वाला था। परन्तु भूख-प्यास के मारे वेचैन उस वैश्य को यह कुछ अच्छा नहीं लगा। वह पहुँचते ही उन सुन्दर फूलों को तोड़ कर वैचने की धुन में लग गया। श्रीर सोचने लगा-यदि मैं इन फूलों को ले जाकर नगर में वेचं तो खाने-पीने के लिये पर्याप्त हो जायगा। ऐसा विचार, वह धीरे से फूलों को तोड़कर विकयार्थ किसी नगर में चला गया; परन्तु वहाँ प्रयत्न करने पर भी कुछ नहीं विका। जब सूर्यास्त होने को श्राया, तब वह निराश होकर श्रपनी स्त्री को साथ ले किसी एक टूटे-फूटे देवालयमें गया। वहां जाकर वे दोनों निराहार सी रहे। इस प्रकार निशोधकाल [ आधी रात ] में संगीत की ध्वनि सुनकर वैश्य चौंक पड़ा और जाकर देखा तो अनेक ब्राह्मण वहां खड़े होकर वड़ी भाव-भक्ति से देवदेव महाकालेश्वर भगवान् की पूजा कर रहे थे। कुछ लोग नृत्य करते हुए उनकी ब्रारती उतार रहे थे। इसी बीच उस वेश्य ने उन कमल-कुसुमों से कुछ फूल बैंचने को कहा। यह सुनकर एक ब्राह्मण ने चौबीस तोला सुवर्ण देकर वह कमल लेना चाहा, परन्तु महाकाल भगवान् के दर्शन के प्रमाव से उस समय उस वैश्य की बुद्धि पवित्र हो गई। मन में विचारने लगा कि मैं फूल व्यर्थ ही बैच रहा हूँ। यदि इन फूलों द्वारा मगवान् का पूजन कह तो वे प्रसन्त होकर मुक्ते सब कुछ दे सकते हैं। श्रीर मैं मनोवांछित वरदान पाकर कल्याण का भागी वन सकता हूं।

पेसा विचार कर तथा अपनी स्त्री के परामर्श देने पर स्नानादि नित्यिकि-याओं से युक्त होकर उसने प्रेमसिहत कमलोंद्वारा भगवान शंकर की पूजा की। तत्पश्चात् श्रुघा से व्याकुल उस वैश्य की वहीं पर मृत्यु होगई। वैश्य की साध्वी स्त्री भी हर्ष युक्त उसकी चिता में भस्म होकर "सती" होगई। इस प्रकार वे दम्पति जन्मान्तर में फिर जन्म छेकर पृथ्वी पर आये। वैश्य कान्तिपुर का राजा हुआ और वैश्यपत्नी दशार्ण्व देश के राजा की राजकन्या हुई। यथा समय स्वयंवर में राजकन्या ने इसी राजा को पित स्वीकार किया। इस प्रकार शिवमिक के प्रभाव से वे दोनों राजा रानी जीते जी इस लोक में प्रम पेश्वर्घ का उपभोग करके अन्त में शिवलोक [कैलासपुरी] को सिधारे।

ततः कालेन सम्प्राप्य देहान्तं स महीपतिः । सम्प्राप्तः परमं स्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ [नागर खरड ४७ अ०]



### एक सौ एकवाँ रत्न

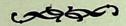
### शिवभक्त धर्मगुप्त

प्रभास क्षेत्र में 'धर्मगुप्त' नामक एक सदाचारी वैश्य रहता था। वह धनाढ्य ग्रौर परोपकारी पुरुष था। उसकी बुद्धि उदार, शरीर सुन्दर ग्रौर मन शिवभक्ति में परायण था। उसकी स्त्री भी उसके अनुकूल तथा प्रियवादिनी थी। वह वैश्य-दम्पित सदैव शिवपूजन में तत्पर रहते हुए न्याय से काम किया करते तथा शिवरात्रि का वत रहकर शिवाराधन किया करते थे। एक वार एक शिवालय में वे दोनों पूजन के लिये पहुँचे। शिवरात्रि का महापर्व था, दिन में वतोपवास रहकर रात में शिवपूजन करने लगे। इसी बीच वहां एक चोर ग्राया। उसने विचार किया कि ग्राज शिवरात्रि है, शिवमन्दिर में यात्रियों की ग्रपार भीड़ होगो, ग्रतः वहां चलने से कुछ ग्रवश्य ही गहरा माल हाथ छगेगा। इस प्रकार वह मन ही मन निश्वय करके एकान्त में छिपकर जा बैठा।

इधर वह पापी चोर चोरी की घात में लगा हुआ था। उधर मन्दिर में नृत्य-गान हो रहा था, सभी लोग उधर ही तन्मय होकर उत्सव में लगे हुए थे। जब कुछ रात्रि शेष बची तव किसी कार्यवश धर्मगुप्त की स्त्री बाहर निकली। वह चोर उसे बाहर निकलते ही भट उसके कानों से कर्णफूल छीनकर ले भागा। वैश्यपत्नी चोर २ विख्लाने लगी। कोलाहळ सुनकर लोग इधर-उधर दौड़े। तत्पश्चात् नगर-रक्षक [पूलिस] चोर को ढूँढ़ने के लिये मेजे गये। वह शीब्रही पक्षड़ा गया। चोर ने उस सुवर्ण-भूषण को भय से मुख में छिपा लिया। राजरक्षकों [सिपाहियों] ने चोर का सिर तलवार से काट डाला। वह वहीं मरकर शिवधाम को चळा गया। क्यों कि उस चोर ने पाखण्डवृत्ति द्वारा भी रात

में जागरण किया था। रात्रि में उस जागरण के प्रताप से तथा शिवसानिध्य में मरने के कारण जन्मान्तर में वहीं चोर "सुदर्शन" नामक राजा हुआ। जो शिव भक्ति करके रानीसहित शिवलोक को चला गया। क्योंकि शिवजी के नाम जपने से, उनके लिंगार्चन से तथा उनके मन्दिर में निवास करने से मनुष्य परम पद को पाता है।

पापानां हरणं शम्भोनीम शाक्तिाई पावनी। शक्नोति पातक तावत्कर्जुं नापि नरः क्वचित्।। (विद्येश्वर संहिता २४ अ०)



# एकसौ दोवाँ रत्न

### शिवभक्त 'श्रीकर' गोप

उज्जैन नगरी में 'चन्द्रसेन' नामक एक राजा रहते थे। वे महाकाल शिव की प्रेम सहित पूजा किया करते थे। एक दिन वे उनके पूजन-ध्यान में मन्न थे। इसी बीच एक पाँच वर्ष का गोप-बालक अपनी माता के साथ वहां आ पहुँचा। उस बालक ने आश्चर्य तथा प्रेम से वह शिवपूजन देखकर प्रणाम किया और एक विचित्र माव से उस कौतुक को हृद्य में रख, शिवपूजन की उत्कण्ठा प्रगट करने लगा। मार्ग में प्राप्त एक सुन्दर पत्थर के दुकड़े को घर छाया। उसे शिवछिंग समक, भाव-भक्ति के साथ, विधिवत् पुष्प-चन्द्रनादि चढ़ाकर उनकी पूजा करने लगा और उनके ध्यान में मग्न होगया।

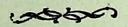
इसी बीच उसकी माता उसे भोजन के लिये बुलाने आई। जब उसके अनेक प्रयत्न करने पर भी बालक नहीं सुना और नध्यान ही छोड़ा, तब उसकी माता ने नेत्र मूंद कर शिवध्यान करते हुए अपने बालक को बलपूर्वक उठा ले चलने का विचार दूढ़ करके उस शिवलिंग को फेंक दिया। और बालक को उठा कर ले चलने लगी। किसी प्रकार घर पहुँच कर लड़के ने अपने ध्यान-पूजन की माताद्वारा मंग जानकर भगवान की स्तुति करना प्रारम्भ किया। वारंवार ही देवदेव, हा परमात्मन्! शम्मो !! द्या करो, मुक्ते बालक जानकर मेरे अपराधों की क्षमा करो"—इस प्रकार विलाप करता हुआ, पृथ्वीपर मूर्छित हो गिर पड़ा । तद्वन्तर कुछ सचेत होकर नेत्र खोला और देखा तो सामने एक अपूर्व विचित्रता देखने में आई। वह अपने घर के सामने महाकाल भगवान का विचित्र मन्दिर— जिसमें सोने के किवाड़ लगे हुए हैं, जो रत्नजटित हैं, और जिसके भीतर एक प्रकाशमान ज्योतिर्छिंग देदी प्यमान हो रहा है—जिसके प्रकाश से रात्रि में दीपक की आवश्यकता नहीं पड़ती—ऐसी विशाल मूर्त्ति एवं अनुपम मन्दिर देखकर वह आश्चर्यित होगया। तत्पश्चात् वह गोपसुत भगवान महादेव की स्तुति करने लगा।

इस प्रकार जब स्वास्त हो आया तब वह बालक अपने घर गया। वहां अपनी भाता को देववधू की भाँति सोती हुई जान कर उसे जगाया। माता ने जागते ही अपने घर के सामने एक अद्भुत मन्दिर देवा। पुत्र को सामने खड़ा देखकर प्रेम से गोद में बैठा लिया और प्रेमालिंगन करके शिवभक्त उस बालक की मनही मन प्रशंसा की। इधर शंकर जी की अनुकम्पा से गोपी और गोपसुत आनन्द करने लगा। उधर महाराज चन्द्रसेन गोपी के पुत्र का आश्चर्यमय चित्र खुनकर उसके घर आये। चहां महाकालेश्वर भगवान की अपूर्व मूर्ति एवं विशाल मन्दिर को देखकर राजा चिकत हो गये। गोपसुत को बुलाकर उसे हृदय से लगाया और उसके इस कार्य की भूरि २ प्रशंसा की। मनही मन उसके भाग्य की सराहना करके वे स्वयं भी कृतार्थ हुए।

उसी समय भगवान की दया से किपराज श्रीहनुमानजी वहाँ प्रगट हुए।
श्रीर राजा श्रादि मनुष्यों से कहने लगे—''हे मनुष्यों! संसार में शीघ्र कर्याण कारी भगवान शिवजी को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है। तुम लोग प्रत्यक्ष ही गोपसुत को देख रहे हो। इसने कौन सो तपस्या की है? ऋषि मुनि हजारों वर्ष तक तप करके जो फल नहीं पाते, वह इसने बाळकपन में ही पा लिया। यह श्राशुतोष महाकाल भगवान की दया का ही फळ हैं। इसलिये तुम छोग भी इनके दर्शन से कृतार्थ हो श्रो श्रीर यह भी स्मरण रखो। इस बालक की आठवीं पीढ़ी में महा यशस्वी नन्दगोप नामक एक राजा होगा। उसीके यहां भगवान श्रीहण्याजी पुत्रकप से लीला करेंगे। श्रीर समस्त गोपों को श्रपनी श्रद्धुत लीलाश्रों द्वारा चिकत करेंगे।" इस प्रकार हनुमानजी सन्देशा देकर वहीं श्रन्त-धीन हो गये। यथाकाल महाकाल भगवान का पूजन-ध्यान करके श्रीकर गोप श्रीर महाराज चन्द्रसेन भी सपरिवार शिवधाम गये। जो इस चरित को मन

लगाकर सुनेगा और पढ़ेगा, वह भी शीघ्रही अपने मनोरथों को पाकर अन्त में सद्गति पावेगा।

कालन श्रीकरः सोऽपि चन्द्रसेनश्च भूपितः । समाराध्य महाकालं भनेतुः परमं पदम् ॥ ७६ ॥ (शि॰ पु॰ क॰ सं॰ ४ अ०)



# एक सौ तीनवाँ रतन

### महाकाल और नन्दी वैश्य

प्राचीन काल में उज्जैनपुरी में "नन्दी' नामक एक वैश्य रहता था। वह घनी-मानी तथा क्रियानिष्ठ सज्जन पुरुष था। वह नित्य शिवपूजन में तत्पर रहता तथा वेद-वेदांग-शास्त्र निष्णात विद्वानों द्वारा शास्त्रोक्त विधि ( आसन, पादा, आर्घ, स्नान, आचमन, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, अक्षत, पुष्प, चन्दन धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा और आरती-आदि षोडशोपचारों) से कराया करता था। इस प्रकार उस भाग्यवान् नन्दी वैश्य ने वर्षों तक अखण्ड पूजन कराया।

एक दिन एक ब्याधा घूमता हुआ शिवलिंग के समीप आया। निकट के सरीवर में जलपान करके बाहर आया तो नन्दी वैश्य से पूजित उस शिवलिंग को देखा। लिंग के पास जाकर जलपात्र के अभाव से अपने मुंह के कुल्लाद्वारा ही उनको स्नान कराया। एक विल्वपत्र चढ़ा तथा अपने भोजन की सामग्रो को उन्हें अपंग करके भोजन किया और मनमें नित्यपूजन का संकल्प करके वह अपने घर लीट आया।

जब दूसरे दिन नन्दी प्रातःकाल वहाँ पहुँचा तो शिविलग को अपवित्र तथा वहाँ के पात्रों को जूठा देखकर वह बड़ा चिन्तित हुन्ना। शिवालय को घोकर पुनः पूर्ववत् पूजन करके घर छीट श्राया। घर श्राने पर उस दिन नन्दी बहुत उदास था। उसके पुरोहित महाराज ने इस प्रकार नन्दी के उदास का कारण पूछा—तब नन्दी ने कहा—हे विप्रदेव! श्राज मैंने मन्दिर में बड़ी श्रंपवित्रता देखी है। न जाने यह किसने किया है। यह न जानकर मेरा चित्त श्रत्यन्त दुःखित हो गया है। पुरोहित ने कहा—कल सबेरे चलकर में इसका पता लगा लूंगा। श्राप चिन्ता छोड़ दें। दूसरे दिन नन्दी ने पुरोहित के साथ फिर मन्दिर में जाकर विधिवत पूजन किया। आज पुजा करते २ उसे दोपहर हो गये। ठीक मध्याह में 'महाकाल' नामक एक भील (किरात) उन लोगों से देखा गया। पुरोहित ने अनुमान किया कि यह वही व्याधा है, जिसने उस दिन मन्दिर को अपवित्र किया था। उस विकराल वेषधारी महाकाल को देखकर नन्दी तथा उसके पुरोहित दोनों उरकर वहीं छिप गये। जब वह किरात पुनः शिवपूजन करके अपने स्थान पर चला गया, तब ये दोनों भी अपने घर लौट आये। यहाँ आकर वैश्य ने विद्वान ब्राह्मणों को बुलाया और किरात के किये हुए सब कामों को सब से कह सुनाया। तब ब्राह्मणों ने कहा—हे वैश्यश्रेष्ठ! उस लिंग को अपने घरपर लाओ। नन्दी ने ब्राह्मणों की आज्ञा से शिविंग को वहाँ से उखाड़, अपने घर पर छाया और नवरहों से सुशोभित सुवर्ण की पीठिका बनाकर, विधिवत्न उसकी प्राणप्रतिष्ठा करायी। तदनन्तर षोडशोपचार से शिवजी का पूजन किया।

उधर नियमानुसार किरात फिर दूसरे दिन यथाकाल वहाँ पहुँचा। जब शिवलिंग वहाँ नहीं दिखाई दिया, तव वह किरात ऊँचे स्वर से चिल्ला २ कर पुकारने लगा—हे शम्मो! कहाँ गये ? आज दर्शन दो, नहीं तो में अपना प्राण् त्याग हुँगा। हे त्रिपुरान्तक! हे प्रभो !! हे रुद्ध महादेव !!! आप शीघ्र दर्शन दो नहीं तो में अब एक क्षण भी आपके दर्शन बिना नहीं जी सकता। जब उसे दर्शन नहीं मिला, तब वह कोधित होकर, दर्शन की इच्छा करता हुआ शिवजी के पूजन के लिये, जल-अक्षत-विल्वपत्र आदि देकर वहीं दण्ड के समान गिर गया और चिल्लाया कि पे शम्मो! आप शीघ्र दर्शन देकर मुक्ते कृतार्थ करें, नहीं तो लीजिये आपको यह प्राण् निद्धावर है। भूतलपर गिरा हुआ किरात शिवध्यान में निमन हो गया।

इस प्रकार अनन्य भक्ति वाले उस किरात के सम्मुख गणों से युक्त कपूर के समान चमकंनेवाले जटाजुटघारी, भक्त भयहारी, गंग-सिरधारी, भाल-चन्द्रमा विहारी वह अद्भुत रूपधारी नाग-यक्कोपवीती श्रीशंकरजी ने दर्शन देकर कहा—हे बनवीर ! तुम हमारे भक्त हो। अतः मनोवांखित वरदान माँगो। भग-वान् शिवजी के बचन सुनकर वह बोला—हे शिवशम्भो! 'मैं आपका दास होऊँ और आप मेरे स्वामी होवें। अर्थात् आपकी विमल भिन्त मुक्तमें हो। बस, यह वरदान दीजिये। क्योंकिः— ब्रहं दासोऽस्मि ते रुद्र ! त्वं मे स्वामी न संशयः । एतच्छ्लाघ्यतमं लोके देहि जन्मिन जन्मिन ॥ ७५ ॥ (केदारखंड ६ अ०)

इस प्रकार किरात की निष्काम भक्ति जानकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए। अतः उसको अपने धाम का द्वारपाल बनाकर गणों में मिला लिया। इसी बीच इसके का शब्द वहाँ गूंज उठा। उस शब्द को सुनकर नन्दी वैश्य आश्चर्यित हो, उस तपीवन में आया। वहाँ गणों सहित शिवजी का निवास जानकर वह किरात की स्तुति करने लगा; क्योंकि वही द्वारपाल था। बिना उसकी आज्ञा के शिवजी के पास जाना असम्भव था। नन्दी बोला—हे परन्तप! में आपकी शरण में हूं, सुके भो भगवान् के दर्शन कराओं ?

नन्दी का विनम्न बचन सुन, किरात ने उसका हाथ पकड़कर उसे अग-वान की शरण में लाया। दयालु शिवजी ने हँसकर किरात से कहा—यह कौन है? इसे तुम गणों के समीप तक कैसे छाये? किरात ने कहा—हे देव! यह ब्रापका भक्त आपकी सदैव विधिवत् पूजा किया करता है। हे भक्त बरसल! स्वामिन्!! आप नन्दी को अपना अनुचर समिभये। श्री महादेव जी बोले हे महाकाल! में नन्दी वैश्य को नहीं जानता। तुम मेरे भक्त और सखा भी हो। इसिलये हे तात! तुम जो कहो, मैं वहीं कर्फ गा। यह वश्य तुम्हारा अनन्य भक्त जान पड़ता है और तुम हमारे भक्त हो, इसिलये यह भी हमारा परम भक्त कहलाया। उसी समय द्यालु शंकर की कृपा से विमान आया और उन दोनों को उसपर बैठाकर कैलासपुरी में पहुँचा दिया। वहाँ वे दोनों विश्वेश्वर की साक्ष्य मुक्ति को प्राप्त हुए। इस प्रकार नन्दी और किरात दोनों परम धाम को खले गये।

तयोभीवं स भगवान विदित्वा महसन्निव । ज्वाच परया भक्त्या भवतोरस्तु वाँच्छितम् ॥ ७६ ॥

(केदारं खं० ६ ग्र०)

।। इतिं गुप्तखरह ।।

- म हा मान

983

# एकसी चारवाँ रत्न

## परम शैव 'आहुक' भील

अर्बुदाचल पर्वत के निकट एक 'श्राहुक' नाम का भील रहता था। उसकी स्त्री बड़ी पतित्रता थी। वे दोनों स्त्री-पुरुष परम शिवभक्त थे। अत्यन्त अद्धा-भक्ति से प्रतिदिन शिवजी का पूजन-ध्यान से करना इस दम्पति का नित्यकर्म था। बिना शिवजी के भोग लगाये वह कभी भोजन नहीं करता था।

क एक दिन भगवान् शंकरजी अपने भक्त की परीक्षा के लिये भील के घर पर संन्यासी का कप धारण करके आये। उस समय भोजन की सामग्री लाने के लिये भील कहीं बाहर गया था। संयोगवश उसी समय वह आ पहुँचा। जब आहुक ने अपने घर पर वेषधारी संन्यासी को देखा, तब वह परम प्रसन्त हो, उनका उचित श्रातिथ्य-सत्कार किया। [उसकी प्रेम-परीक्षा के निमित्त श्राये हुए महात्मा संन्यासी ने डरते हुए उससे अपने ठहरने की प्रार्थना की। संन्यासी बोला हे भक्तप्रवर ! मुक्ते आज रात में ठहरने की जगह दो, कल सबेरे ही मैं चला जाऊँगा। भील बोला —हे महात्मन् ! आपका कहना यथार्थ है, परन्तु मेरी भीपड़ी बहुत छोटी है, उसमें श्रापका रहना कैसे होगा। भील का बचन सुनकर महात्मा जी जाने को तैयार हो गये, तब पतिव्रता भीलनी ने विचार कर अपने पति से उन्हें स्थान देने को कहा। भीलनी बोली-"हे स्वामिन्। इन माहातमा को उहरने की जगह देनी चाहिये; क्योंकि ये हमारे अतिथि हैं। अतिथि-सत्कार से बढ़कर गृहस्थ का दूसरा कोई धर्म नहीं है। जिसके यहां से अतिथि निराश हो कर लौट जाता है, उसका सब पुर्य श्रीण हो जाता है, श्रीर पाप का प्रायश्चित लगता है-"ऐसा मैंने साधु-सन्तों से सुना है।" इसिंछिये श्राप संन्यासी को साथ लेकर की पड़ी के भीतर रहिये श्रीर में बाहर पहरा दूंगी।

ं उस समये अपनी भार्या का धर्मयुक्त हितकर वचन सुनकर भील ने

विचार किया कि स्त्री को घर से बाहर रखकर सोना उत्तित नहीं और श्रितिथि को भी बाहर हटाना ठीक नहीं। इसिलिये मुक्ते हो बाहर रहना और इन दोनों की हर प्रकार से रक्षा करना उचित है। इस प्रकार आप्रहपूर्वक उन दोनों को भीतर करके स्वयं वह भोंगड़ी से बाहर निकल कर पहरा देने लगा।

जब श्राघी रात बीती तब वहां एक विकराल ब्यां श्राया। श्रीर भील को मक्षण कर गया। श्रनेक यस्त करने पर भी भील श्रपने को न बचा सका श्रीर महात्मा के दुःखी होने के भय से उन्हें जगाया भी नहीं। प्रातःकाल संन्यासी ने देखा कि ब्याब्रहारा मारा गया भील मृत्यु को प्राप्त हुश्रा है, तो वह वड़ा हुःखी हुश्रा। उसे चिन्तित जान भीलनी ने धैर्य के साथ संन्यासी से कहा— महात्मन्। श्राप क्यों दुःख करते हो ! मैं धन्य हुँ—जो मेरा पित श्रापकी रक्षा के लिये स्वर्ग चला गया। इससे वे भी कृतार्थ हुए होंगे। हे स्वामिन्! मैं भी श्रव श्रीन में प्रवेश कर, उनके शव के साथ सती हो जाऊँगी। प्रेम श्रीर हर्ष के साथ इस प्रकार सती होना ही हम स्त्रियों का सनातन धर्म है।

वह भीलनी ज्योंही चितापर जाकर बैठो, त्योंही उसकी प्रेम-परीक्षा से प्रसन्न साझात् शिवजी प्रगट होकर "धन्य हो सती, धन्य हो"—ऐसा कहते हुए बोले—हे ब्रन्धे! मैं तेरे इस ब्राचरण से अत्यन्त प्रसन्न है, तुम मनोवांखित बरदान माँगो। भगवान का यह वचन सुनकर वह प्रेम-मग्न हो मौन रही। उसकी तल्लीनता देल कर ब्राशुतोष भगवान शंकरजी ने स्वयं कहा—ऐ पुण्ये। तुम्हारा कल्याण हो। देलो, यह संन्यासी जन्मान्तर में 'इंस' होगा, तुम्हारा पति भील निषध देश के राजा वीरसेन का 'नल' नामक पुत्र होगा ब्रीर तुम विद्र्मनगर के महाराज भोम की पुत्री "दमयन्ती" होगी। इस प्रकार पृथ्वी पर जन्म प्रहण कर, राज्यसुक्षोपभोग करके अन्त में तुम लोग योगियों के दुर्लम पद (शिवधाम) को प्राप्त करोगी। ऐसा कहकर शिवजी वहीं शिवलिंग कप होकर निवास करने लगे। तब से उस लिंग का नाम "यतीश" पड़ गया। जो मनुष्य इस यतीश महादेव का दर्शन करता तथा इस ब्रह्महंस अवतार का स्वरित्र सुनता या सुनाता है, वह परमगति (मोक्ष) को पाता है। तथाहि:—

यतीश-ब्रह्महंसाख्याऽवतारचरितं शुभम् । शृणुयाच्छ्रावयेद्यो हि लभते स परां गतिम् ॥ ३६ ॥

(शा॰ द० सं० २६ अ०)

# एकसौ पाँचवाँ रतन

#### शिवअक्त 'चयड' शबर

पाञ्चाल देश में एक 'सिंहकेतु' नामक राजा बड़े गुण्ज तथा धर्म-परायण थे। इनको शिकार खेलने से बड़ा प्रेम था। एक दिन क्षत्रियवीर ये राजा अपने अनुचरों के साथ किसी वन में शिकार खेलने गये। मार्ग में उनके एक अनुचर ने-जो शबर ( स्लेच्छ ) जाति का था-किसी पुराने टूटे-फूरे शिवमन्दिर में एक मुन्दर शिवलिंग देखा। अपने पूर्वजन्म के सुकृतवश उस मूर्तिपर शवर का बड़ा प्रेम हो गया, उसके मनमें सद्भाव उत्पन्न हुआ। अतः उसने बड़े आदर के साथ उस शिवलिंग को श्रपने पास रख, राजकुमार सिंहहेत से दिखलाया श्रीर प्रेम से विद्वल होकर पूछा-महाराज! यह सुन्दर शिविंछग देखिये, मैंने अभी मार्ग में पाया है। मेरी इनपर श्रद्धा-मक्ति हो गई है। इसलिये इनके पूजन की विधि हुए। करके बतलाइये। हमारे जैसे अधम (मंत्र तंत्र न जानने वाले ) के ऊपर ये कैसे प्रसन्न हो सकेंगे ? इसका उपाय भी बताइये । हास्यरस की मूर्त्ति उस राजकुमार ने परिहास करते हुए, निषाद अनुवर से कहा - तू सदैव जल से स्नान करा; म्रासन पर विठा, सुगन्धित द्रव्यों एवं पुष्पाक्षतादि से इनकी पूजा करके धूप दीप दिखाना और चिता का सस्म लेपन कराकर अपने खाद्य पदार्थीका भोग लगाना। बन पड़े तो नृत्य-वादन भी कराना । यदि स्वयं नाच सको तो श्रौर भीशीव्र प्रसन्न हो सकेंगे। चिता का भस्म कभी न भूलना चाहिये।

इस प्रकार परिहास रूप में समझाये जाने पर भी, शिवगक चएडशबर वे उसे अक्षरशः सत्य माना, श्रीर दूसरे दिन से श्रद्धा-भक्ति समेत उपरोक्त विधि से उस लिंग की पूजा करने लगा। इस प्रकार अपनी स्त्रीसमेत प्रतिः इस शिवपुजन करता हुआ उसने कई वर्षों तक सुखपूर्व क समय व्यतीत किया। एक समय शिवपुजन के लिये शबर पात्र में चितामस्म न देखकर भस्म लाने के लिये बाहर गया। जब दूर २ तक ढूंढ़ने पर भी भस्म न मिला, तब वह निराश होकर घर लीट श्राया और श्रपनी स्त्रो से कहा कि प्रिये! श्राज भस्म नहीं मिलता, श्रब क्या किया जाय श्राज मुक्त पापी के शिवाराधन में यह बड़ा भारी विश्न उपस्थित हो गया, क्योंकि बिना शिवपुजन किये में एक दिन भी नहीं जी सकता। इस प्रकार पतिकी विकल देख, शबरी ( उसकी स्त्रो ) ने कहा—हे स्वामिन्! श्राप घवड़ाइये नहीं, निर्मय होकर शिवध्यान में तत्पर रहिये। मैं श्रभी भस्म का उपाय करती हूं। देखिये अपना घर जला, उसी अग्नि में प्रवेश करके मैं स्वयं जल कर मस्म होती हूं। उससे आप अपना काम कर लीजिये। शबर ने अपनी स्त्री के पेसे प्रेम तथा साहस युक्त बचन को सुनकर उसे समभाया। प्रिये! धर्म, अर्थ, काम, मोक्षक का सर्वोत्तम साधन शरीर है। पेसे शरीर को तुम भस्म न करो।

शबरी बोली-प्राणनाथ! इस श्रसार संसार में शरीर नाशवान् है, यह किसी दिन अवश्य नष्ट हो जायगा । इसलिये यदि यह किसी देवकार्य या उपकार के कार्य में लग जाय तो इससे बढ़कर कोई और कार्य नहीं होगा। इस प्रकार अपनो स्त्री को भगवान शंकर की भक्ति में अटल जानकर 'ऐसा ही हो" कह कर फिर बोला-प्रिये ! तू धन्य है श्रौर तुम्हारे इस कर्मद्वारा में भी धन्य हूँ, जो श्रपने इष्ट-देव के लिये फूल की तरह अपना प्राण निछावर कर रही हो। जाओ, शीछ स्नान करके पवित्र हो, अपने कथना तुसार अग्नि में प्रवेश करो। पति की आज्ञा पाकर प्रसन्नमना वह शबरी भ्रग्नि में प्रवेश करके बोली-हे देव! हे वैश्वानर! मेरी इन्द्रियां श्रापके लिये पुष्प हो, यह पाथिव शरीर धूप हो, स्नेह युक्त हृदय दीप हो, प्राण द्रव्य हो, ज्ञानेन्द्रियां ग्रक्षत होवें, यह जीव फल हो, इस प्रकार हमारे सभी श्रंग-प्रत्यङ्ग श्रापके पूजन की सामग्री हो । इसी निमित्त में यह श्रपना शरीर तेजः स्वक्षप ज्योतिर्मय साझात् प्रभु शंकरको अपित करता हूं। इसके बदले मैं यदि फिर कहीं जन्म खूं तो श्रापके चरणारविन्द की भ्रमरी वन्ं -यही मेरी श्रमिलाषा है। इसके अतिरिक्त में स्वर्ग-अपवर्ग को भी तुच्छ समभती हूँ । हे सदाशिव! में बार बार आपको प्रणाम करती हूँ। ऐसा कहकर वह भीलनी ज्योंही अंग्नि में प्रवेश करने लगी, त्योंही जलकर मस्म हो गयी।

शबर ने भी उस भस्म को बड़े प्रेम से लेकर महेश्वर का आदर से पूजन-भजन किया। अन्त में खाद्य पदार्थों का भोग लगाकर विनयपूर्वक रोमाञ्चित हो गदुगद स्वर से अपनी स्त्री का स्मरण करता हुआ वह भगवान की स्तुति करने लगा। इसी बीच अपने पीछे भक्ति से नम्र, पवित्र हास्यवाली अपनी स्त्री को देखकर शबर ने विचार किया कि अग्नि तेज से, सूर्य किरणों से, राजा दण्ड से, और ब्राह्मण मन से जलाता है; परन्तु यह स्त्री अग्नि से जल न सक्ती। इसका क्या कारण ? यह सोच, विस्मय से युक्त शबर ने अपनी स्त्री से पूछा कि तुम कैसे आ गयी हो, अभी तो अग्नि में भस्म हो गयी थी। वह बोलो कि मुझे इस बातका

क्ष धर्मार्थकाममोज्ञाणामारोग्यं मूलसाधनम्।

तिक भी ध्यान नहीं कि मैं अनि में जलायों भी गयी थी ! इस प्रकार दोनों में परस्पर बातें होहों रहीं थीं कि एकाएक एक अद्भुत विमान-जो करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रकाशमान, जार शिवदूतों द्वारा नोयमान, छत्र-चामर समेत देदीएय-मान था—उसके सामन उत्तर आया। उसी पर स्त्रीसमेत उस निषाद को बैठाकर वे दूत शिवलोक को चले गये। निषाद-दम्पति ने भी मनहीं मन योगियों के भी दुर्लम पद को पाकर, अपने को तथा अपने पूर्वजों को भी इतकृत्य समभा और कहा कि संसार में वही पुरुष धन्य है, जिसपर आशुतोष शिवाशिव प्रसन्न रहते हैं। क्योंकिः—

किं वा पुरायं मम पितुः का वा मातुः कृतार्थता । यच्छिवार्थे सम्मिद्धग्नौ त्यजत्येतत्कलोवरम् ॥ ३६ ॥

वाञ्छासि नाहमपि सर्वधनाधिपत्यं न स्वर्गभूमिमचलां न पदं विधातुः । भूयो भवामि यदि जन्मिन नाथ नित्यं स्वत्पादपंकजलसन्मकरन्दरृङ्गी ॥ किञ्जन्मना सकलवर्णजनोत्तमेन कि विद्यया सकलशास्त्रविचारवत्या । यस्यास्ति चेतसि सदा परमेशभक्तिः कोन्यस्ततस्त्रिमुवने पुरुषोऽस्ति धन्यः ॥



# एकसी छठवाँ रतन

# एक बहेलिया

नैमिषारएय में कोई एक बहेलिया रहता था। वह ग्रत्यन्त कुकर्मी, निर्द्यी ग्रीर पर-धनापहारी था। उसने न कभी जत किया, न दान-पुण्य। न पूजा-पाठ किया, न जप-तप। केवल छल-कपट द्वारा मनुष्यों का —विशेषतः पथिकों का-द्रब्य ग्रपहरण करना ही उसका-नित्यकर्म था।

एक बार माध के कृष्णपक्ष में समस्त पातकों का नाश करनेवाली शिव-रात्रि का महापर्व आया। उस समय दूर-दूर के यात्री देवदेव त्रिशूलधारी श्री शंकरजी के दर्शन-पूजन के निमित्त नैमिषारएय में एकत्र हुए। वहां शिवजी का एक विशाल मन्दिर था। शिवरात्रि के दिन सभी यात्रियों ने व्रतोपवास रहकर रात में जागरण किया। उन दर्शक मंतुष्यों में बहुमूख्य वस्त्राभूषणों से विभूषित

हित्रयाँ भी थीं। इस जोर बहेलिया ने शिवालय के निकट जाकर विवार किया कि जब स्त्रियां शौचादि के निमित्त बाहर श्रावेंगी, तब मुक्ते गहरा माल हाथ लगेगा। इसी ब्राशा से वह मिन्दर के बाहर ही छितकर एक वेलवृक्ष पर जा बैठा।

जिस वृक्षपर वह चोर बैठा था, उसके नीचे भी एक शिवलिंग था। पत्तों के गिरने से भगवान् शंकर की निष्काम एवं अज्ञात पूजा हो गई। थोड़ी ही देंट में चोरों के शत्रु, साधुमों के मित्र भगवान् भास्कर (सूर्य) का उदय हुआ। घरी घंटा वजने लगा । सभी यात्री प्रातःकाल उठकर पूजन-ध्यान में लग गये। पूजनोपरान्त यात्री [ नर-नारी ] लोग अपने २ घर चले गये। उधर चोर भी निराश होकर अपने घर को लौट गया। कालान्तर में जब उस बहेलिया की मृत्यु हुई, तब वह शिवरात्रि के जागरण तथा श्रज्ञात शिवपूजन के प्रभाव से दशार्ण देश के राजा के घर उत्पन्न होकर एक बड़ा धर्मात्मा शिवभक्त राजा हुआ। उसने अपने राज्य में शिवभक्ति का बढ़ा प्रचार किया और कई शिवालय बनवाये। वह स्वयं भी शिवलिंग का पूजन प्रतिदिन करता हुआ प्रति शिवरात्रि के पूर्वका उत्सव मनाया करता तथा ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा द्वारा संन्तुष्ट किया करता था। इस प्रकार वह राज्यसुख का उपभोग करके सपरिवार शिवधाम को प्राप्त हुआ। कलिकाल में नर-नारियों के लिये इससे सरल उपाय संसार-लागर से पार होने के लिये दूसरा कोई नहीं है। देखिये:-

तस्पात्सर्वेमयत्नेन कारयी सा चपसत्तम्। कालिकाले विशेषण य इच्छेद्वभूतिमात्मनः ॥ ७८ ॥ एषा कृता च शिविना नलेन नहुषेण च। मान्धात्रा घुन्धुमारेण सागरेण युयुत्युना ॥ ७६ ॥ तथा चैव तु सवित्रया श्रिया देव्या तु सीतया । अरुन्धत्या सरस्वत्या पार्वत्या मेनया तथा ॥ ८१ ॥ इन्द्राएया च द्दषद्वत्या स्वधया स्वाहया तथा। रत्या मीत्या च गायत्र्या तथाऽन्याभिर्दृपोत्तम ॥ ८२॥ सर्वाः प्राप्ता प्रियान्कामानतिसौभाग्यसंयुताः ॥ ८३ ॥ नागर खं० ग्रं० २२१)

## एकसौ सातवाँ रतन

#### एक ब्रह्मराच्नस

पक्त बार महापापी दुराचारी दुष्ट बुद्धिचाला 'दुर्जय' नामक एक ब्रह्मराक्षस मिद्रा-पानसे उन्मत्त होकर, इधर उधर घूमता हुआ 'क्रांचवन' में पहुँचा।
वहां जाकर उसने भगवद्धिक में परायण पिवजातमा शिवयोगी नामक एक
ब्रह्मिष्ठ महात्मा को देखा। देखते ही वह उस शिवयोगी को भक्षण करने के लिये
वेग से दौड़ा। विकराल बदन, तीक्षण दाँतों वाले उस भयं कर राक्षस को अपनी
ओर आक्रमण करते देखकर भी वह महात्मा अचल के समान निश्चल तथा
समुद्र के समान गंभीर हो, स्थित रहा; परन्तु अपना ध्यान नहीं छोड़ा। राक्षस
ने शिवयोगों को पकड़ लिया। वह राक्षसाधम महात्मा के अङ्गस्पर्श से निष्पाप
होकर इस प्रकार पवित्र पदां दिव्य हो गया, जिस प्रकार चिन्तामणि को छूकर
लोहा सोना हो जाता है, जञ्जूनदी के स्पर्शसे मृत्तिका सुवर्ण हा जाती है, मानसरोवर को पाकर कौवा हंस हो जाता है और अमृत को पोकर मनुष्य अमरत्व
को प्राप्त हो जाता है। वसे हो साधु-सन्तों क के दर्श-स्पर्श ने से शीब्र ही मनुष्य
सद्दगित को प्राप्त करता है। इसिलये सत्संग दुर्लम ‡ है।

शिवयोगी सुनि के श्रङ्गों के सफेर भस्मकर्णों के लगने से, भूख-प्यास से व्यत्र, भयंकर वह बनवारी राक्षस तुप्त हो गया। उसी क्ष्मण उसकी तमोगुणी बुद्धि नष्ट हो गई श्रीर पूर्वजन्म का स्मरण हो श्राया। झट वह योगी के चरण-कमलों पर गिरकर, विनय करते हुए बोला—हे दयानिधे! हे ब्रह्म योगीश्वर!! हे श्रानन्द-सागर!!! सुक्त पर छपा करिये श्रीर व्रसन्त होकर मेरे श्रघों का विनाश करिये। इस प्रकार श्रपनी स्तुति सुनकर शिवयोगी बोले, कि तुम कौन हो? कैसे यहां रहते हो श्रीर क्यों पेसे महाक्लेश में पड़े हुए दुःख सह रहे हो? राक्षस बोला—हे महात्मन्! में २५ जन्मों से नाना प्रकार की योनि में जाकर कष्ट

क्ष साधूनां दर्शनं पुर्ण्यं तीर्थमूता हि साधवः । तीर्थे फलित कालेन साधुः सहसमागमात् ॥

<sup>†</sup> तथैव तु महात्मानो दर्शन-स्पर्शनादिभिः ।

सद्यः पुनन्त्यघोपेतान् सत्संगो दुर्लभो ह्यतः ॥ (त्र० खं०१५अ० १४ श्लो०)

<sup>‡</sup> महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ॥ ( ना० भक्ति० सू० )

भोगता हुआ आज इस रूप में प्राप्त हुआ हूँ। सर्वप्रथम में पिशाचयोनि में गया। फिर न्याझ, अजगर, भेड़िया, प्रामशूकर, गिरगिट' कुत्ता, सियार, सुरही गाय, मृग, गदहा, बानर, गीध, नेवला, कौवा, भालु. वनमुर्गी, विडाल, मेढ़क, अजा, मछली, चूहा, उल्लू, और हाथी—इत्यादि २४ योनियों में भ्रमता हुआ अपने कर्मविपाक से आज पचीसवाँ 'दुर्जय' नामक ब्रह्मराक्षस होकर श्रुधा- अपने कर्मविपाक से आज पचीसवाँ 'दुर्जय' नामक ब्रह्मराक्षस होकर श्रुधा- प्राप्ता से न्याकुल इधर-उधर घूमता हुआ आपको खाने के लिये यहां आया हूँ, सो आपको द्या से मेरा शरीर दिग्य होगया तथा बुद्धि विमल हो गई। इस समय हमारे मन में द्या, प्रेम और सत्कर्म का सद्भाव उत्यन्न हो गया है। इस- लिये हे योगिराज! यह बतलाने की द्या करें कि आपको यह प्रभाव (तेज) कैसे मिला है किस देवबल या मंत्रबल अथवा तपोबल से आपको यह शक्ति मिली है—जिससे मेरे सरीखे अधम कुक्तमीं राक्षस के मी सब पाप आपके स्पर्शमात्र से दूर हो गये। इस समय में पुण्यात्मा के समान आपके सामने उपस्थित होकर आपकी शरण में आया हुआ अनुचर हूं।

योगी ने कहा—हे भद्र ! यह शिवजी की विभूति का फल है। वे हमारे आराध्य देव हैं। उनके भस्मस्पर्श से ही तुम ऐसे दिव्य शरोरधारी तथा अनेक जन्मों के पापों से मुक्त हो गये हो। सिवाय भस्म के और कौन सा पदार्थ ऐसा हो सकता है—जो तुम्हारे सरीखे अधी को भी इस प्रकार शुद्ध करके शिवधाम दिलावे। अब तुम अपने अभीष्ट स्थान को जायो। यह सब मस्म का माहात्य है।

को नेद भस्मसामर्थ्यं महादेनाहते परः । दुर्विभाव्यं यथा शम्भोमीहात्म्यं भस्मनस्तथा ॥ ५१॥

( ब्रह्म० खं० १५ अ० )



# एकसी आठवाँ रतन

#### शिवभक्त 'महानन्दा' वेइया

प्राचीन काल में, "महानन्दा" नामघाली एक ग्रत्यन्त सुन्दरी वेश्या रहती थी। वह घन-पेश्वर्थ्य से युक्त, गानिवद्या में निपुण श्रीर शिवमिक्त में परा-यंणा थी। वह भरम-रुद्राक्ष को प्रेमसिंहत सदैव घारण करती तथा निरन्तर 'शिव' नाम का जाप किया करती थी। पार्वती समेत भगवान शंकर के विधि- वत् पूजन करते समय नृत्य वाद्य द्वारा वह उन्हें सदैव रिकाया करती थी। उसने अपने पास एक वन्दर और मुर्गा भो पाला था। उन दोनों को रुद्राक्ष की सुन्दर मनियों का भूषण पहनाकर शिवजी के सामने करताल बजाती हुई नवाया करती थी। इस प्रकार उस वेश्या का बड़े सुख के साथ समय वीतता था।

पक दिन उस वेश्या की निष्कपट भक्ति से प्रसन्न होकर पिततपावन भगवान् शंकर जी वेश्य के वेष में उसकी परीक्षा के निमित्त आये। त्रिपुण्ड से शोभायमान मस्तक. उद्राक्ष की माला पिहने, समस्त अङ्गों में भस्म रमाये, हाथ में सुन्हर कंकण पिहने, शिवनाम जपने में आसक्त, रत्नों से शोभायमान उस वैश्य-शिरोमणि को देखकर उस सुन्दरी वेश्या ने शुद्ध भाव से हर्षपूर्वक उनका आदर-सत्कार करके उनके वैठने को पिवत्र आसन दिया। वैश्य के हाथ में सुन्दर कंकण को देखकर लोमित महानन्दा बोली—'हे वैश्यशिरोमणे! स्त्रियों के पिहनने योग्य रत्नजटित यह आपका कर-कंकण मेरे मन को छुट्ध कर रहा है।

इस प्रकार उस वेश्या की इच्छा देखकर, वह वैश्य हँसते हुए बोला—हे सुन्दरी! यदि तुम्हारा मन इस कंकण पर मोहित है तो तुम इसे छे सकती हो, पर इसका मूख्य क्या दोगी? परिहास रूप में महानन्दा ने कहा—में वेश्या हूँ। यदि श्राप ग्रपना कर-कंकण मुक्ते दे देंगे तो में तीन रात तक श्रापकी प्रिया (स्त्री) बनी रहूँगी। वैश्य ने कहा—यदि तुम्हारा चचन सत्य है तो छो, यह कंकण में तुक्ते दिये देता हूँ। साथ ही रत्नमय एक शिवछिंग भी देकर वैश्य ने कहा—हे प्रिये! यह रत्नजटित शिवलिंग हमारे प्राणों से भी श्रिष्ठिक प्यारा है। इसको बड़ी सावधानी से पवित्र स्थान में रखना। वेश्या नृत्यगृह में शिवछिंग रखकर सुखपूर्वक विहार करने छगी। श्रक्तमात् नृत्यमण्डप में श्राग लग जाने के कारण श्रनेक बहुमूल्य वस्तुश्रों के साथ वह रत्नजटित शिवलिंग भी जलकर सुर २ हो गया। यह दुर्घटना देखकर वेश्या तथा वैश्य दोनोंही मनमें दु:खी हुए।

उस समय वैश्य ने शिविंछिंग को जला हुआ देख, वेश्या के हृद्यगत भावों को जानने के निमित्त अपने मरण की इच्छा प्रगट की। नाना प्रकार की लीला करने वाले मनुष्य-देहधारी कौतुकी भगवान् शंकर जी महा दुःखित हो कर उस वेश्या से बोले-हा, प्रिये! अब मैं क्षण भर भी जीवित न रह सक्ंगा। क्योंकि जब प्राणों से भी प्यारा हमारा शिविंछिंग नष्ट हो गया तब यह अधम शरीर रह कर ही क्या करेगा ? इसलिये मेरे लिये तुम शीव्र ही चिता सजाओ, में शिवध्यान में रत होकर अभी चिता में प्रवेश करके प्राण निद्धावर कर दूँगा । ऐसा हुट्ड संकल्प देख कर वेश्या ने चिता सजाकर आग जला दी और उसमें वैश्यक्षपधारी वह महापुरुष भट प्रवेश कर गया। यह देख, महानन्दा अत्यन्त विस्मय में पड़ कर खेद करने लगी और अपने घरवालों से कहने लगी कि पे महाशयो! में इस वैश्य महोद्य से एक रत्नजटित कर-कंकण लेकर तीन रात के लिये इनकी पत्नी हुई थी। इस बीच इनकी इस प्रकार मृत्यु हो गई। इसलिये में भी इनकी चिता पर जाकर जल मरती हूँ। ऐसा न करने से हमारा सत्यव्रत नष्ट हो जायगा। क्योंकि सत्य से ही स्वर्ग तथा मोक्ष भी मिलता है छ।

इस प्रकार सत्य में तत्यर हुई वह वेश्या अपने बन्धु-बान्धवों के मना करने पर भी, अपना सर्वस्व धनादि ब्राह्मणों को दान करके, पतितपावन भगवान् शंकर का ध्यान करती हुई, अग्नि को प्रदक्षिणा करके उसमें प्रवेश कर गई। उसके इस प्रकार अग्नि में प्रवेश करते ही साक्षात् भगवान् शिवजी ने उसे बचा लिया और उसके इस सत्यप्रेम तथा साहस की प्रशंसा करते हुए पंचवदन, निनेत्र, नागयक्षोपवीती, गंग-सिरधारी, भाल-चन्द्रमाविहारी महाप्रभु शिवजी ने उसे दर्शन दिया। उनका दर्शन करते ही अश्रुपूर्ण नेत्रवाली रोमांचित बद्नवाली उस वेश्या का हाथ पकड़ कर महादेवजी ने कहा—है सत्यवते! तुम्हारे इस कार्य से में अत्यन्त प्रसन्न है। में स्वयं तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये वेश्यवेष में आया था। अब तुम्हारी परीक्षा हो चुकी, तुम मनावाँ ठिछत वरदान माँगो। तुभे आज सुर-मुनियों के भी दुर्लभ पद में देने को उपस्थित हैं।

यह आश्चर्यमयी घटना देखकर महानन्दा विस्मित होकर बोलो—हे देव-देव ! मुफ्ते लौकिक सुख-सम्मित नहीं चाहिये। मैं केवल श्रापके चरणारविन्द को ही चाहती हूँ। श्रतः यदि श्राप प्रसन्न हैं तो मुक्ते श्रपनी दासी बनावें श्रीर मेरे परिवारवालों को भी श्रपना परम धाम देवें।

तव पाजम्बुजस्पर्शादन्यार्देकचित्र कामये ॥ ४६॥

क्ष सत्यः श्रेयः परो धर्मः सत्येन परमा गतिः । ... सत्येन स्वर्गमोच्चौ च सत्ये सर्वे प्रतिष्ठितम् ॥ ४८ ॥

# एकसी नवाँ रतन

#### एक वेश्या

दक्षिण देश के 'वास्कल' नामक ग्राम में 'विदुर' नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह दुष्ट, दुराचारी एवं वेश्यागामी था। वह दिन भर श्रपने घर काम-काज करता और रात में वेश्या के घर सोया करता था। यहाँ तक कि ऋ द कान के बाद भी वह श्रपनी उस सुन्दर स्त्री का परित्याग कर, वेश्या से ही रमण करता था।

इस प्रकार अपने पित का अनाचार देख तथा कामदेव की प्रवलता को न सह सकने के कारण ब्राह्मणी ने विनयपूर्वक ब्राह्मण से कहा — हे स्वामिन्! आप प्रति दिन मेरा अनादर करके देश्या के यहाँ जाते हैं और मैं क्षपवती होती हुई भी प्रतिदिन कामवेदना सहती हूँ। यह कब तक सहा जायगा? आप अब से मेरे अपर दया करें। उसने ऐसा सुनकर उससे भी ऐसा ही करने को कहा। ब्राह्मण् बोला—कामिनि! तुम भी पर-पुरुष से रित करो और उससे धन छेकर मुक्ते दो। मैं वेश्या को उस धन से प्रसन्न कक गा। ऐसा करने से हम दोनों की कामचेष्टा पूरी होगी।

कुछ दिनों तक इसी प्रकार चला। बाद में जब वेश्यापित उस कुकर्मी की मृत्यु हुई, तब देवयोग से एक महापर्व के दिन वह वेश्या गोकणंश्रेत्र में गई। वहाँ तीर्थहनान करके उसने एक देवालय में किसी विद्वान् ब्राह्मण् द्वारा पुराण की कथा सुनी। उसमें उन्होंने कहा था कि जो स्त्री पर-पुरुष के साथ रित करती है, उस स्त्री के गुह्मस्थान में यमदूत लोग तपे हुए लोहे का सलाका डालते हैं। इस प्रकार भयंकर यमदण्ड को सुनकर भयभीत उस ब्राह्मणी ने एकान्त में उस कथावाचक विद्वान् से कहा — हे विद्वन् ! मैंने अनजान में बड़ा उम्र पाप किया है। उसके परिणाम-फल का मुक्ते बड़ा भय हुम्रा है। मैं बारम्बार काँव रही हुं। मुक्त पापिनी को धिककार है! जो क्षणिक सुख के लिये पेसी दुर्गति देनेवाला पाप मैंने किया। हाय! मैं भयंकर उन यमदूतों द्वारा दण्ड दिये जानेवाले रौरवकुण्ड में, तप्त तेल में पकाये जानेवाले, श्रान्न से तपाये गये लोहजनमों में सटाये जानेवाले यमदण्डों को कैसे सह सकूंगी? दस हज़ार अश्वमेध यक्ष तथा सैकड़ों वर्ष गंगास्नान करने पर भी इस पाप से

अ ऋतौ भार्यामुपेयात्।

छुटकारा नहीं मिलेगा। में अब दिनरात इसी चिन्ता में रहती हूं, कि मेरा उद्धार कैसे होगा। हे ब्राह्मण देवता! अब आपही मेरे गुरु हैं, मैं आपकी शरण अवार कैसे होगा। हे ब्राह्मण देवता! अब आपही मेरे गुरु हैं, मैं आपकी शरण आयी हूँ। मेरे उद्धार का कोई उपाय बताइये? इस प्रकार चरणों पर गिरी हुई, आयी हूँ। मेरे उद्धार का कोई उपाय बताइये? इस प्रकार चरणों पर गिरी हुई, ब्रोह्म से वैराग्य प्राप्त उस स्त्री को दयालु ब्राह्मण ने दया करके उठाया और कहा कि तुम डरो मत। अब तुम्हारे पापों को नष्ट करनेवाला, उत्तम गित देनेवाला उपाय बताता हूँ।

विद्वान् ब्राह्मण् ने कहा —"हे ब्राह्मण् ! भगवान् शंकर की उत्तम कथा के सुनने से तुम्हारी बुद्धि इस समय विमल हो गई है। इसीलिये किये हुए कुकर्मों का प्रश्नात्ताप पर्व संसार से वैराग्य हो रहा है। सो श्रव मेरे कहे उपायों को ध्यान से सुनो। "पापकर्म जो हो गया सो, हो गया। श्रव मविष्य में न करना। उत्तम कथा सुनने एवं सत्संगति करने से पाप में मन नहीं जाता। व्रतोपवास करना पापनाशकं होता है। जैसे घोये हुए शुद्ध द्र्पण में अपना स्वरूप साफ दिखाई देता है, वैसे ही सत्संग तथा पूजन से चित्त शुद्ध होता है। शिवनाम के जपने से मनोमालिन्य दूर हो जाता है। कार्यक, वाचिक श्रीर मानसिक पापों को शिवजी की निर्मल कथा क्षण भर में नाश कर देती है। सब प्रकार से पवित्र इद्यवाले लोग शिवधाम में जाकर सद्गति पाते हैं। सांसारिक सभी विषयों से मन को हटाकर उत्तम शिवभक्ति में अपनी इन्द्रियों को अपित करके शिवकथा सुनने से चित्त शुद्ध होता है। चित्त शुद्ध होने पर विश्वेंश्वर में प्रेम होता है, फिर प्रेम होने से शिवजी के चरणारविन्द में ध्यान होता है,ध्यान से विमल ज्ञान उत्पन्न होता है, तब शानक से मुक्ति मिलती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि पापी से भी पापी शिवाराधन से निष्पाप होकर सद्गति को प्राप्त करता है। इसलिये हे ब्राह्मणि! मैं सत्य २ कहता हूँ। तुम निश्चिन्त होकर अब शिवार्चन में लग जावी।"

इस प्रकार के सदुपदेश को ब्राह्मण-गुरुद्वारा सुनकर वह ब्राह्मणी शिवपूजन में लग गई। नित्य नियमानुसार उनका पूजन-ध्यान करती हुई एक बार शिवजी के प्रेम में गदुगद हो, श्रांसुश्रों की धारा से श्रार्द्रवदन वह गिरिजापित भगवान् शंकर की इस प्रकार स्तुति करने लगी:—

"हे विश्वेश्वर! हे विश्ववन्द्य, शिवशम्मा ! मेरे ऊपर कृपा करो, मैं श्राप

Constitute to

अ ऋतेर्ज्ञानात्र मुक्तिः।

को बार २ प्रणाम करती हूँ। हे चन्द्रभाल, शान्तमृत्ते! हे गंगाधर, श्रमरवृन्दवन्ति चरण !! हे भक्तवत्सल, भूतेश !!! मुफ दीना के पातकों का संहार करके शरण दो। हे नीलकएठ, महादेव! हे उमापते, महेश्वर! जगिक्रवास, जगदीश्वर!!!! श्राप श्राशुतोष श्रीर पापनाशक हैं। इसिलिये मेरी श्रोर दयादृष्टि करो, में प्रणाम करती हूँ।" इस प्रकार वह प्रतिदिन शिवस्तुति करने तथा शिवगुणगान सुनने लगी। कालान्तर में जब उसकी, मृत्यु हुई तब शिवजों के गण-दूत वहाँ श्राये श्रीर उसे श्रपने दिव्य विमान पर बैठाकर श्रानन्द के साथ कैलास पुरी में श्राकर शिवशरण में ले गये। वहां नन्दी श्रुंगो श्रादि गणों से युक्त दिव्य शिव-परिवार को देख, वह ब्राह्मणी विस्मय में पड़ गई श्रीर वाम माग में श्रीपार्वती, गोद में श्रीगणेश-षड़ानन तथा श्रन्यान्य पार्षदों से शोभायमान भगवान् शंकर को उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। पुलिकत अंगों वाली उस स्त्री को पार्वतीजी ने बड़े श्रादर-भाव से श्रपने निकट बैठाया श्रीर उसे श्रपनी-दासी बनाकर श्रानन्दित किया।

पक बार उस स्त्री ने श्री पार्वती जी से पूछा—हे स्वामिनि! मेरा पित स्स सम यकहाँ है ? उसकी सद्दगित कैसे होगी ? पार्वती जी ने कहा—तुम्हारा दुष्ट पित यमलोक में जा, नाना प्रकार की यम-यातनाश्रों को सहकर इस समय विन्ध्यपर्वत पर पिशाच हुआ है। ऐसा सुन कर उसने अपने पित के उद्घार के लिये पार्वती से प्रार्थना की। वार्वार उसकी प्रार्थना सुनकर दयामूर्ति पार्वती जी ने तुभ्वक नामक गन्धर्य को बुलाकर कहा—हे तुम्बक! तुम इस स्त्री के साथ विन्ध्याचल पर्वत पर जाओ, वहाँ क्रूर बुद्धिवाळा इसका पित पिशाच योनि में है। उसके सामने दूर्गति-नाशिनी मेरी प्यारी कथा कहकर उसे निष्पाप करके भगवान् के पास ले आवो। श्राज्ञा पातेहो वह शोध्र विनध्य पर्वत पर पहुँचा और उस पिशाच को शिवाशिव की श्रद्धत कथाएँ सुनाने लगा। पाप-विनाशिनी उन निर्मल कथाओं के सुनते ही पिशाच योनि से मुक्त हो, दिन्य शरीरधारी उसको ( पित स्त्री समेत ) विमान द्वारा शिवपुरी में ले आया। यहाँ आकर वह भगवान् शंकर की इस प्रकार स्तुति करने लगा:—

विश्वेश विश्वनिलय स्थितिजन्महेतो

विश्वैकवन्य शिवशाश्वत विश्वरूप।

विध्वस्तकालविपरीतगुणावभास

श्रीमन्महेश मयि घेहि कुपाकटाचम् ॥७॥

श्रम्भो शशाङ्ककृतशेखर शान्तम् च

गङ्गाधरामरवराचितपादपद्म ।

नागेन्द्रभूषण नगेन्द्रनिकेतनेश

भक्तार्चिह्नमि निषेहि कुपाकटाचम् ॥ ८ ॥

श्रीविश्वनाथ करुणांकर श्लापण

भूतेश भगेभुवनत्रयगीतकी तें ।

श्रीनीलकएठ मदनान्तक विश्वमूर्चे

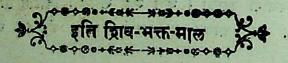
गौरीपते मिय निषेदि कुपाकटात्तम् ॥ ६ ॥

( ब्रह्मो॰ खएड २२ अ० )

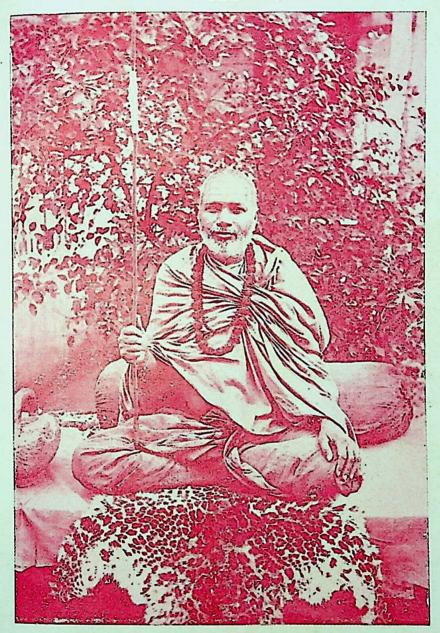
सावधान होकर जो मजुष्य पापनाशक इस उत्तम स्तोत्र का पाठ करता तथा इस चरित्र को सुनता और दूसरों को प्रेमसहित सुनाता है, वह इस संसार में सुख भोगकर अन्त में सर्वोत्तम गति को पाता है।

य इदं भृषुयान्मर्त्यः क्रीत्तेयेद्वा समाहितः । शम्मोर्गुणपकथनं विचित्रं पापनाशनम् ॥ ३१ ॥ परमानन्दजनकं भवरोगमहौषधम् । अक्त्वेह विविधान्भोगान् मुक्तो याति परांगतिम् ॥३२॥

( ब्रह्मी० खं २२ अ०)



#### परित्राजकाचार्य्यं श्री १०८ घनश्यामानन्द्जी तीर्थं महाराज, मुमुच्च भवन, काशी।



नित्यं ब्रह्मविचारणाप्रवण्धीः संत्यक्त-सांसारिक-

व्यापारोऽखिलशास्त्रपाठनपरः प्रज्ञावतामप्रणीः ।

यस्याखएडतपः प्रभावविगतक्रोधादिवैरिव्रजः

सौधोप्याश्रमबद्धिभाति स घनश्यामो यती राजते ॥



# परिशिष्ट

#### ॥ श्रीगरोशाय नमः॥

# काशी-मोच्च-विचार

- 6% BOLES

श्रीशंकर-पद-पद्म को, बन्दि सदा सुख-कन्द । "काशी-मोक्ष-विचार" यह, रचौं त्याग जगद्रन्द ॥

श्रुति-स्मृति तथा पुराण-इतिहास के देखने एवं सन्त महात्माओं के श्रुत्य द्वारा भी यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि विमुक्तपुरी काशी में मृन्यु के समय प्राणी को भगवान् शिवजी "तारकमन्त्र" द्वारा मोक्ष प्रदान करते हैं। महात्मा एवं विद्वान् लोग तो शास्त्रों (श्रुति स्मृति पुराणों) के श्रवेलोकन द्वारा श्रुपने सन्देह की निवृत्ति कर लेते हैं, श्रीर समीप श्रानेवाले मजुष्यों का भी संशय सदुप देशों द्वारा दूर कर ही देते हैं; परन्तु जो लोग इस सौभाग्य से बंचित हैं. श्रथवा जिन्होंने न शास्त्र-पुराण देखा, न सत्संगति हो की। उन भक्तों के लिये ही मैंने श्रपने सुने हुए तथा प्रन्थों में देखे हुए प्रमाणों में से थोड़ा—बहुत संग्रह कर दिया है। क्योंकि कितने मजुष्य यह संरेह कर वैउते हैं कि विना ज्ञान के मुक्ति कदापि नहीं हो सकती (ऋतेर्ज्ञानान्न मुक्तिः) है।

यद्यपि यह शङ्का युक्तियुक्त है; तथाि नोचे के प्रमाणों से उनका सन्देह निवृत्त हो जायगा। निस्सन्देह भगवान् शंकर के तारक मन्त्रोपदेश द्वारा प्राणिमात्र को मरण काल में ज्ञान की प्राप्ति होती है श्रीर फिर ज्ञान से मुक्ति के होने का भी समन्वय हो जाता है। यदि इस विषय में विस्तृत कप से ज्ञानना चाहें तो "काशी-मोक्ष-निर्णय" देखें। #

#यह पुस्तक पूज्य श्री १०८ स्वामी घनश्यामानन्द्जी तीर्थ की श्राज्ञा से पं श्रीसरयूप्रसाद शास्त्री इत 'मुक्ति-सुधा' नामक भाषाटीका सहित छप रही है। पुस्तक प्राप्ति 'मुमुश्च-भवन' असी काशी, श्रीर भक्ति-प्रनथ-माला, ठी० रामचन्द्र-गौरीशंकर, गोरखपुर से हो सकती है।

#### शिवगीता-

#### गर्भजन्मजरामृत्युसंसार-भवसागरात् । तार्यामि यतो भक्तं तस्माचारोऽह्गीरितः ॥ ३४ ॥

अर्थ-गर्भवास, जन्म, जरा और मृत्यु रूपी संसार-सागर से मैं भक्तों को तार देता हूँ। इसलिये मेरा नाम %'तारक' कहा गया है।। ३४।।

#### भस्मजाबालोपनिषद्-

त्रिश्चलगां काशीमधिश्चित्य त्यक्तासचोऽपि मय्येव संविशन्ति। एष एव देशः। एष एव उपदेशः। एष एव परमो धर्मः।

अर्थ-भगवान् शंकर के त्रिशूल पर स्थित काशीपुरी में रहकर प्राण त्यागने पर जीव मुक्तको ही पाता है।

### जाबालोपनिषद्-

अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु †रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासाव मृतीभूत्वा मोत्तीभवात तस्मादाविश्वक्तभेव निषेवेत अविश्वकं न विश्वंचेत् ।

अर्थ—काशी में प्राण-त्यागने के समय दु:खों को नाशकरने वाले कद्र भगवान् 'तारक-मंत्र' देते हैं —िजस मन्त्र के प्रभाव से जीव जन्म-मरण से रहित हो जाता है। अतः काशी-सेवन अवश्य करे। इस अविमुक्तपुरी का निवास कभी न छोड़े।

# प्राणाग्निहोत्रोपनिषद्-

वाराणस्यां मृतो वापि इदं वा ब्रह्म यः पठेत् । एकेन जन्मना जन्तुर्मीत्तं च प्राप्तुयादिति ॥

अर्थ-जो प्राणी श्रीकाशीजी में देह-त्याग करता है, अथवा वह अन्त में तारकब्रह्म को पढ़ता है, उसे एक जन्म में ही मुक्ति मिलती है।

श्चित्रवारः प्रथमान्तरो भवति, उकारो द्वितीयान्तरो भवति, मकारस्तृतीया-चरो भवति, अर्द्धमात्रश्चतुर्थान्तरो भवति, विन्दुः पंचान्तरो भवति, नाद्ष्पष्टान्तरो भवति, तदेव 'तारकं' ब्रह्मस्वं विद्धि ।

ं रुद्र—रु दुःखं द्रावयतीति वा रुद्रः, रुद्रमित्युच्यते । तस्माच्छिवं परमकारण्म ।

## मुक्तिकोपनिषद्--

यत्र कुत्रापि वा काश्यां मरणे स महेन्वरः। जन्तोर्दे जिएकर्णे तु मत्तारं सम्रुपादिशत्।। काश्यां तु ब्रह्मनाजेस्मिन्मृतो मत्तारमाप्नुयात्। पुनराष्ट्रित्ते मुक्तिं मानवः॥

अर्थ-श्रीकाशीजी, विशेष करके ब्रह्मनाल के बीच में जो मरता है, वह मनुष्य जन्म मरणसे रहित होकर मुक्त हो जाता है।

# महाभारत अनुशासनपर्व-

क्तिटपत्तीपतङ्गानां तिरश्चामपि केशव । महादेवप्रपन्नानां न भयं विद्यते क्वचित् ॥

अर्थ-कीड़ा, जन्तु, पतंग और पत्ती भी यदि महादेव जी की शरण लेते हैं तो उनको कहीं (जन्म-मरणका ) भय नहीं होता।

#### आत्मपुराण-

कुमिकीटपतको वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः । मृतश्चतुर्विधो जन्तु स्त्रनेत्रत्वसुपैति हि । अर्थ-काशी में मरने से कृमि-कीट-पतक्क तथा विद्वान् ब्राह्मण-ये चार प्रका-रके प्राणी भी भगवान् त्रिनेत्र (शिव) को पाते हैं।

# श्रीमद्रागवत दादशस्कन्ध-

क्षेत्राणं चैव सर्वेषां यथा काशी ह्मनुत्तमा ।

अर्थ — सूतजी ऋषियों से कहते हैं कि अनेक चेत्र हैं, पर उनमें काशी ही एक उत्तम चेत्र है।

दर्शनाहेबदेवस्य ब्रह्महत्या प्रणश्यति। प्राणानुत्सृज्य तत्रैव मोन्तं प्राप्नाति मानवः॥ अर्थ-देवों के देव श्रीमहादेवजी के दर्शन से ब्रह्महत्या का भी पाप छूट जाता है अर्थात् काशीक्षेत्र में प्राण्त्याग से मनुष्य मोन्न पाता है।

# श्रीमत्स्वामी शंकराचार्यजी—

काशी धन्यतमा विद्युक्तनगरी सालंकता गंगया । तत्रेयं मिणकिर्णिका सुस्कारी सुक्तिहि तत्किकरी ॥

अर्थ काशी जी धन्यतमा अर्थात् अत्यन्त पुर्यक्ष उत्तम नगरी है-जहां गंगाजी शोभायमान हैं। उसमें मिएकिएका उत्तम सुख देनेवाली है-जिसकी मुक्ति भी दासी है।

# लिंगपुराण-

काश्यां यो वे मृतश्चेव तस्य जन्म पुनर्नाहे । अर्थ-काशी में मरनेवाले प्राणी फिर संसार में जन्म नहीं लेते; क्योंकि वे सायुज्य मुक्ति पाते हैं।

#### शिवरहरूय-

जले स्थलेऽन्तरिने वा यत्र कुत्रापि वा मृताः । तारकं ज्ञानमासाद्य कैवल्यपद्भागिनः ॥

अर्थ:—श्री काशीजी में पृथ्वी, जल, आकाश आदि किसी जगह भी यदि
मृत्यु हो (अकाल मृत्युभी हो ) ते। वह प्राणी भगवान शिवजी के तारक-मन्त्रोपदेश—
द्वारा मोच पद का भागी होता है।

#### स्कन्दपुराण-

श्चसीवरुणयोर्मध्ये पञ्चक्रोशमहत्त्तरम् । श्चमरा मृत्युमिच्छन्ति का कथा त्वितरे जनाः ॥

अर्थ:—असी और वरुणा के बीच में—पब्चकोश (काशीचेत्र) में— देवता लोग भी जन्म लेकर मृत्यु चाहते हैं, तब इतर मजुष्यों की कथा ही क्या है ?

#### काशीलएड—

अन्यानि मुक्तित्तेत्राणि काशीमाप्तिकराणि च ।

काशीं प्राप्य विमुच्यन्ते नान्यथा तिर्थकोटिभिः ॥

कीटाः पतङ्गा मशकाश्र द्यता जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः ।

मएडूकमत्स्याः कुमयोऽपि काश्यां त्यरीवा शरीरं शिवमाप्नुवन्ति ॥

अर्थ-अन्यान्य मुक्तित्तेत्र, केवल काशी को प्राप्त कराते हैं । परन्तु काशी
को पाकर प्राणी मुक्त हो जाते हैं । अर्थात् अन्य करोड़ों तीर्थों से बड़ी यह काशीपुरी
है ॥ कीट, पतङ्गः मच्छड़, वृच्च, जलचर, थलचर आदि प्राणी भी अपने

शरीर को छोड़कर कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥

# वायवीयसंहिता-

येनैकजन्मना ग्रुक्तिर्यस्मात् करतत्ते स्थिता । अनेकजन्मसंसार-त्रन्ध्निमीचकारिखी ॥

अर्थ-श्री काशी जी में एक ही जन्म से मुक्ति हो जाती है। क्योंकि यह अनेक बार जन्म देने वाले संसार-बन्धन को नाश-कारक है।

# जाबालोपनिषद्—

्र मुक्तेश्च प्रापकं त्ह्येतच्चतुष्ट्यमुदाहृतम् । शिवार्चनं रुद्रजप उपोष्यं च दिनत्रयम् ॥ वाराणस्यां च मरणं मुक्तिरेषा चतुर्विधा ।

अर्थ—मुक्तिको देनेवाले ४ नियम हैं (१) शिवपूजन (२) रुद्रजाय (३) उपवास (४) काशीजी में शरीरत्याग।

· NOW

कुत्रःचिच शुभं वर्षेत् कुत्रचित्पापसंत्रयः । सर्वेषां कर्मणां नाशो नास्ति काशीपुरी विना ॥

अर्थ कोई चत्र पुराय को बंदाता है, कोई पापों का नाश करता है, परन्तु काशीवास समय कर्मों का नाश करनेवाला है। अर्थात् मुक्ति देनेवाली केवल श्री काशीपुरी ही है।

## शिवपुराण-

सर्वे वर्णा आश्रपाश्च बालयोवनवार्द्धकाः । अर्थ-सब वर्ण आश्रमवाले बालक, वृद्ध तथा युवावस्था वाले प्राणी काशी जी में शरीरत्याग करने से युक्त होते हैं-इसमें संशय नहीं ।

#### मत्स्यपुराण-

एक एव प्रभावोऽस्ति चेत्रस्य परमेश्वरि ।

एकेन जन्मना देवि मोचं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥

अर्थ—इस (काशीजी) की एक सबसे बड़ी महिमा यह है कि, यहाँ

एकही जन्म में जीव बत्तम मोच पाता है।

#### नारदपुराण-

योजनानां शतस्थोऽपि यो विश्वयंत स्मरेचादि ।

बहुपातकपूर्णोऽपि स पापैने प्रबाध्यते ॥

अर्थ-यदि एक सौ योजन पर स्थित रहकर भी श्रीकाशीजी का स्मरण
करे तो। बहुत पापकर्म से पूर्ण होने पर भी वह पापों से रहित हो जाता है।

# कूर्मपुराण-

यत्र साचान्महाँदवो देहान्ते स्वयमीश्वरः ।

व्याच्छे तारकं ब्रह्म तदेवातिविम्नुक्तिदम् ॥

अर्थ-श्री काशीजी में साचात् शंकरजी जीव को मरण समय में तारक

ब्रह्म का उपदेश देते हैं। यह वही मोचदायिनी काशीपुरी है।

ब्रह्म वैवर्तपुराण-

अविग्रक्तं समासाद्य न त्यजेन्मोत्तकाग्रकः । नेत्रन्यासं दृढं कृत्वा वसेद्धमेपरः सदा ॥ अर्थ-अविमुक्त काशीचेत्र को पाकर मुक्ति की इच्छा रखने वाला पुरुष चेत्र संन्यास दृढ़ करके धर्मापरायण होकर काशीवास करे।

## पद्मपुराण-

तीर्यातराणि जत्राणि विष्णुभक्तिश्र नारद् । श्रतःकरणसंशुद्धि जनयन्ति न संशयः ॥ वाराणस्यपि देवर्षे तादृश्येव परन्तु सा । प्रकाशयति ब्रह्मेक्यं तारकस्योपदेशतः ॥

अर्थ-अन्यान्य तीर्थ तथा विष्णुमक्ति आदि क्रेवल अन्तः करण की शुद्धि करती है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु हे नारद जी ! केवल काशी ही तारकब्रह्म के कपदेश से 'मुक्तिपद' को देती है ॥

#### काशीखएड-

उत्तरं द्विणं वापि भ्रयनं न विचारयेत् । सर्वे। ऽप्यस्य शुभः कालो ह्यविम्रके मिये यतः ॥

अर्थ—हे प्रिये! काशी मरण के लिये कोई समय या पर्वेविशेष की गिनती नहीं है। क्योंकि इस अविमुक्तक चेत्र में जो मरता है, उसके लिये सब समय दिन एक सा है।

# सनत्कुमारसंहिता-

रयान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चाँडालुरेमन्त्रया वा रमशाने । कृतपयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो देहावसाने लभतेऽत्र मोचम् ॥

अर्थ—इस पुरी में गिलयों में, मूत्र, बिष्टा से दूषित स्थानों में चांडाल के मूह में या समझान मूमि की कहीं भी विधि से या अविधि से मरने पर जीव मीच को प्राप्त करता है।

#### ुकाशीखएड-

संसारभयभीता ये ये वद्धाः कर्मबन्धनैः। येषां क्वापि गतिनुस्ति तेषां वाराणसी गतिः॥ श्रुतिस्मृतिविद्दीना ये शौचाचारविवर्णिताः । येषां क्वापि गतिनीस्ति तेषां वाराणसी गतिः ॥

अर्थ—जो सांसारिक अय से डरे हुए हैं, अथवा जो कर्मपाश से वैधे हुए हैं और जिन्हें कहीं गति नहीं मिलती, उनके लिये काशी ही गति देने वाली है। जो वेद-शास्त्र नहीं जानते अथवा शौचादि नित्यिक्रयाओं से रहित हैं और जिन्हें कहीं गति नहीं, उनके लिये भी यह काशी नगरी ही मोच्चवायिनी है।

#### पद्मपुराण-

काश्यां मृतस्तु सालोक्यं सान्नात्प्राप्नोति सत्तमः । ततः सरूपतां याति ततः सानिध्यमश्जुते ॥ ततो ब्रह्मैकतां याति न परावर्तते पुनः ॥

अर्थ—काशी में मरे हुए सज्जन साद्यात् सालोक्य को प्राप्त करके सारूच्य युक्ति पाते हैं, फिर वे सान्तिष्य भोगते हैं। तत्पश्चात् ब्रह्मैकता को प्राप्त करके पुनः संसार में नहीं आते।

#### बह्मपुराण-

चतुर्घा वितते चेत्रे सर्वत्र भगवाञ्चिवः । व्याचच्टे तारकं वाक्यं ब्रह्मात्मैकप्रबोधकम् ॥

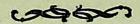
11 - 7

अर्थ—इस चेत्र में चारो ओर फैले हुए भगवान शिवनी ब्रह्मैकल को भताने वाले 'तारक' मन्त्र का उपदेश करते हैं।।

#### रामायण-

जह असि जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानि कर । जह बस शम्भु भवानि, सो काशी सेइय कस न ॥

अर्थ-गुक्ति का जन्मस्थान, ज्ञान की खानि और पापों को नाश करनेवाली इस काशीपुरी में अन्नपूर्णा सहित श्रीविश्वनाथजी निवास करते हैं—ऐसी पुरी में क्यों न निवास किया जाय, अर्थात् अवश्य काशीवास करना चाहिये।

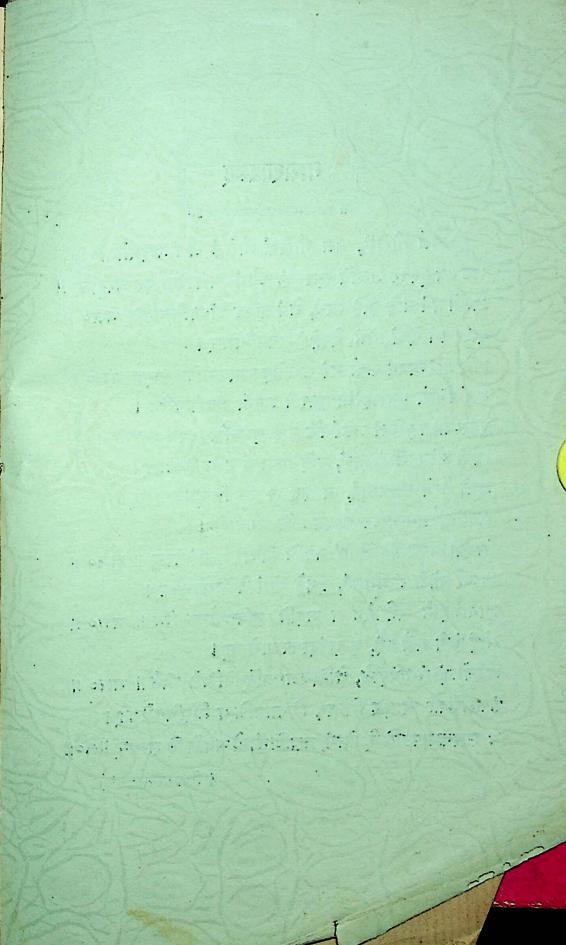


( ; )

#### \*WIRDE

Company of the compan

The telegraph of the construction of the const



# गौरीशाष्ट्रकम् 🗓

भज गौरीशं, भज गौरीशं गौरीशं भज मन्द्रमते । जडभवं दुस्तर जलिंध सुतरणं, घ्येयं चित्तेशिव हर चरणाम् ॥ अन्योपायं नहि नहि सत्यं, गेयं दांकर दांकरनित्यम् ॥ अज्ञ० ॥ दारापत्यं चित्रं वित्तं, देहङ्गेहं सर्वमनित्यम् । इति परिभावय सर्वासारं गर्भविकृत्यास्वप्नविचारम्॥ अज्ञ०॥ मलवैचित्ये पुनराष्ट्रतिः पुनरपि जननी जठरोत्पत्तिः । पुनरप्याशाकुलितं जठरं किं नहि मुञ्चिस कथमे चित्तम्।। मायाकल्पितमैन्द्रं जालं, नहि तत्सत्यं दृष्टिविकारम्। ज्ञाते तत्वे सर्वमसारं, मा कुरु मा कुरु विषयविचारम् ॥ रज्ञौ सर्पञ्चमणारोपस्तद्धद्बह्मणि जगदारोपः। मिथ्या मायानोहिवचारं मनिस विचारय वारंवारम् ॥ भज्ञ० ॥ अध्वर कोटी गंगागमनं, कुरुते योगं चेन्द्रियद्मनम्। ज्ञानविहीने सर्वमतेन न भवति मुक्तिर्जन्मशतेन ॥ अज०॥ सोहं हंसो ब्रह्मैवाहं, शुद्धानंदस्तत्त्वपरोहम्। अद्वैतोऽहं संगविहोने, चेन्द्रियआत्मनि निखिले लीने॥ भज०॥ शंकरिकर मा कुरु चिन्ता, चिन्तामणिता विरचितमेतत्। यः सद्भक्तपापठित हि नित्यं, ब्रह्मणि लीनो भवति हि सत्यम् ॥ अ०॥ (शिव-मनोरञ्जनी)

